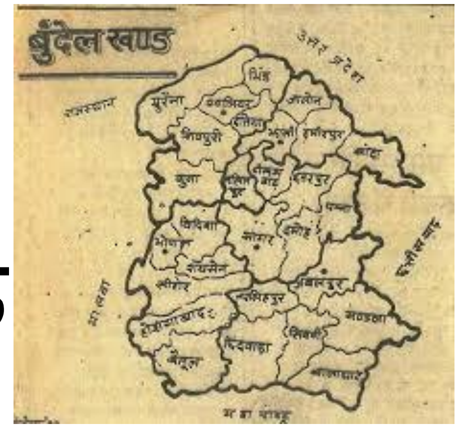
अरविन्द कुमार त्रिपाठी
द्वारा
पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन





लोक चित्रकला
Folk Painting Art

Puratan BANDA, Bundelkhand ka Sankshipt Varnan

Arvind Kumar Tripathi

ISBN : 978-93-5906-820-6

लोक चित्रकला **Folk Painting Art**

अध्याय शीर्षक	लोक चित्रकला
सर्वाधिकार	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक
आइ एस बी एन/ **ISBN**	978-93-5906-820-6
प्रकाशक	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक ग्राम – अछरौन्ड, बान्दा – 210 001 उत्तर प्रदेश
मूल्य	निःशुल्क, पुस्तक मित्र को देना
सन्स्करण	प्रथम, 01 अप्रैल 2020
आवरण/मुखपृष्ठ	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक
शब्द – संयोजन	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक
मुद्रक	अरविन्द कुमार त्रिपाठी, लेखक
सन्दर्भ/साभार/सौजन्य	अध्याय **Reference** देखे

Chapter Heading	**Folk Painting Art**
Copyright @	**Arvind Kumar Tripathi, The Writer**
ISBN	**978-93-5906-820-6**
Publisher	**Arvind Kumar Tripathi** **Village - Achharaund** **Banda - 210 001** **Uttar Pradesh**
Price	**Free, Circulate to Friends**
Edition	**First, 01 April 2020**
Cover Main	**Arvind Kumar Tripathi, The Writer**
Word Compositor	**Arvind Kumar Tripathi, The Writer**
Printer	**Arvind Kumar Tripathi, The Writer**
Reference/ Gratitude/ courtesy	**Peruse Chapter - REFERENCE**

पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड– बान्दा क्षेत्र में लोक चित्रकला का सङ्क्षिप्त वर्णन

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

लोक–चित्रकला

कुछ उत्सव जिनमें चित्र पाए गए।

1	देवठान एकादशी		20	हरियाली अमावस्या
2	फूलचौक पुन्सवन सन्स्कार		21	कन्हैया आठें
3	उरैन		22	बाबू की दौज
4	गोधन		23	साउन सुदी नमें
5	दौज		24	दस्तौन
6	दसरैंया		25	दुर्गा आठें
7	नौरता सुआटा		26	कोहबर या मैहर की पूजा
8	अक्ती		27	सोमवती अमावस्या
9	चितैरी		28	सुहागिलें(सुहागिनें)
10	हरायतें		29	सुआटा
11	ढरकौना		30	गड़ालेनी आन्ठे
12	आरते मौरते तथा हाथे थापे		31	महालक्ष्मी
13	भये के सान्तिया		32	कुठला पूजन
14	सुराती		33	आस माई
15	अहोई अष्टमी		34	ऋषि पन्चमी
16	करवा चौथ		35	चैती पूनों
17	नागपन्चमी		36	चरूआ
18	कुनघुसूं पूने		37	गोदना
19	हरछठ		38	

लोक–विश्वास

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेननर —महर्षिव्यास

अर्थात् लोक को प्रत्यक्ष देखने वाला ही सर्वदर्शी होता है।

उपरोक्त कथन पुष्ट करता है कि यदि हम लोक को जानना चाहते हैं, तो हमें लोक चेतना, लोक–भावना तथा सामान्य जन के आचार व्यवहार का निरीक्षण कर सत्यता की परख करनी होगी तभी हम 'लोक' शब्द की व्याख्या करने में सफल होंगें।

लोक की सन्स्कृति, सभ्यता और विश्वास की व्याख्या करने से पूर्व हमे लोक शब्द की विवेचना करना आवश्यक है। अनेक विद्वानों ने इस सम्बन्ध मे अपने मत दिये हैं। अनेक विवाद भी उत्पन्न हुये। उन सभी मतों पर सन्क्षिप्त रूप से प्रकाश डालना आवश्यक है।

जब से सृष्टि की रचना हुई तब से लोक शब्द का प्रादुर्भाव हुआ। वेद पुराणों मे स्वर्ग लोक, पृथ्वी लोक, नाग लोक इत्यादि का सन्दर्भ आता है। पौराणिक साहित्य मे लोक ब्रह्मा का दूसरा नाम भी माना गया है। लोक शब्द की व्याख्या क्रमिक रूप से की जा सकती है।

ऋग्वेद मे अनेक स्थानों पर सामान्य जन के लिये लोक शब्द का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद मे पुरुष सूक्त में लोक शब्द का प्रयोग जीव तथा स्थान के लिये किया गया है।

लोक चित्रकला **Folk Painting Art**

उपनिषदों मे भी अनेक स्थानों पर लोक शब्द का प्रयोग हुआ हैं।

जैमनीय उपनिषद में ऐसा माना गया है कि लोक प्रत्येक वस्तु मे यह प्रभूत या व्याप्त है।

महाभारत के आदि पर्व मे लोक शब्द का प्रयोग जन–साधारण के सन्दर्भ मे किया है।

नाट्य शास्त्र के रचयिता भरत मुनि ने लोक की महत्ता को स्वीकार करते हुये माना है कि अपने ग्रंथ मे मैने जो कुछ नहीं कहा है, वह बुद्धि–जीवियों को लोक से ग्रहण करना चाहिये। उपरोक्त वाक्य यह सिद्ध करता है कि लोक की महत्ता गुरू तुल्य है।

महाभारत मे स्वयम् श्री कृष्ण ने वेद से अलग लोक के अस्तित्व को स्वीकारा है। इसी प्रकार महाव्याकरणाचार्य पाणिनि ने भी वेद और लोक की स्वतन्त्र सत्तायें स्वीकार की है।

प्रागैतिहासिक काल से रामायण काल तक बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पुलिन्द, निषाद, शबर, रामठ, राउत और उसके बाद गोंड, कोल, भील, सहारिया जैसी जन–जातियां यहां निवास करती थी। आदिवासी प्रकृति के अत्यंत समीप थे। इनके प्रमाण गुहा चित्रों एवम् शैलाश्रयों पर उकेरी कला से प्राप्त होते हैं।

विभिन्न माध्यमों पर लोक–चित्रण में भूमि और भित्ति चित्रण के अतिरिक्त बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अन्य माध्यमों पर भी लोक–चित्रण किया जाता है उसका माध्यम– पटा, पान, मिट्टी के बर्तन आदि होते हैं।

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

<u>बुन्देलखण्ड क्षेत्र की लोक चित्रकला</u>

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में लोक–चित्र बनाने के अनेक अवसर होते हैं। इनका चित्रण धार्मिक, सामाजिक एवम् सान्स्कृतिक अवसरों पर किया जाता है। लोक–चित्र अधिकान्शतः मानवीय भावों को चित्रित करने का कार्य करते हैं।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में तो लोक चित्रों की अति प्राचीन परम्परा रही है। पारम्परिक लोक–चित्रों का स्त्रोत आदिम भित्ति–चित्र ही है। उनमें अन्कित प्रतीक आज भी लोक चित्रकला का हिस्सा बने हैं। उनका आकार–प्रकार गुहा चित्रों की श्रृंखला की वर्तमान कड़ी है।

मानव सदैव से रहस्यात्मक प्रवृत्तियों की ओर आकर्षित रहा है। धार्मिक पूजन में बनाये जाने वाले प्रतीकों में जीवन के अनेक रहस्य विद्यमान रहते हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र के पौराणिक इतिहास के अनुसार यहाँ सदैव धार्मिकता का समावेश रहा है। यहां का लोक–जीवन सन्घर्षशील रहा है। धार्मिक भावनायें मानव जीवन को यथार्थ के दुःखों को सहने की शक्ति प्रदान करती है। इसी विचार से धार्मिकता का समावेश यहां प्रत्येक क्षेत्र में देखने को मिलता है जैसे– रबी और खरीफ की फसल आने पर होली, दीवाली मनाना नये अनाज को होली की अग्नि में समर्पित कर उसका उपभोग करना। यह भावना उस ईश्वरीय शक्ति के प्रति श्रद्धा भाव है जिसने श्रम को फली–भूत किया। यही अगाध श्रद्धा ही ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास करने हेतु बाध्य करती है। पृथ्वी की उर्वरा शक्ति की उपासना के प्रतीक होते हैं जैसे जवारे, जो देवी के समक्ष चैत्र तथा क्वांर में बोये जाते हैं। प्रकृति के प्रत्येक कोण में ईश्वर के निराकार रूप को अनुभूति वाला प्राणी को ईश्वर के साकार रूप के दर्शन हेतु प्रेरित करती है। लोक चित्र निराकार ब्रह्म के साकार प्रतीक है। ईश्वर किस प्रकार हमारे जीवन को प्रभावित करता है, यह भाव परम्परागत रूप में चित्रित करना लोक–चित्रण का सबल पक्ष है।

लोक चित्रकला के निम्नान्कित स्वरूप देखने को मिलते हैं–

अनुष्ठानिक लोक चित्रकला

इसके अन्तर्गत विभिन्न पर्वो, उत्सवों, व्रत, पूजन, अनुष्ठान, तिथि एवम् त्योंहारों पर बनाये जाने वाले आलेखन आते हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वर्णित कला के जिन स्वरूपों की चर्चा की गयी है, उनमें यह धूलिचित्र के अन्तर्गत आते हैं। भूमि पर बनाये जाने वाले चित्रों को भूमि अलन्करण या <u>चौक</u> अथवा <u>उरैन</u> कहते हैं। भित्ति पर बनाये जाने वाले चित्र भित्ति अलन्करण अथवा <u>थापे</u> कहलाते हैं।

विभिन्न त्योहारों यथा– भैयादौज, हरछठ, गणेश चौथ, दिवारी, देवउठान, करवा चौथ, कन्हैया आठें, अहोई आठें, नौरता, नागपाँचे, साउनसुदी नमे आदि की पूजा के अवसर पर विशिष्ट अलन्करण परिवार की महिलाओं द्वारा बनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न अवसरों पर महिलाओं द्वारा अथवा पुरोहितों द्वारा चौक पूरन की परम्परा में बनाये गये चित्र इसी कोटि में आते है। इनको गोबर के आधार पर आटा एवम् ऐपन (चावल धोल) खड़िया, गेरू, गुलाल, हल्दी आदि माध्यमों से बनाते हैं। घर के बाहर उरैन डालने के अन्तर्गत चौक बनाने तथा विशिष्ट अवसर परे दरवाजे के चबूतरा या आन्गन गोबर से लीपकर ऐपन (चावल के धोल), खड़िया या गेरू से कलात्मक बार्डर <u>(ढिन्गा)</u> बनाने की कला इसी के अन्तर्गत आती है। प्राचीन काल में समृद्ध परिवारों में मणिरत्नों से चौक पूरने की कला इसकी के अन्तर्गत गिनी जाती है।

वात्स्यायन ने इन कलाओं को <u>तण्डुल कुसुमवलिविकार कला</u> नाम से अभिहित किया है।

लोक–चित्रों के माध्यम भी सरल, सुगम्य होते हैं जैसे, चूना, गेरू, गोबर, मिट्टी व चूने के रन्ग, घर में प्राप्य सामान्य वस्तुयें जैसे– हल्दी, चावल, आटा, सिन्दूर, रोली, महावर, चन्दन, काजल, नील आदि। यह सब साधारण जीवन में प्रस्तुत होने वाली सुलभ सामग्रियां हैं। इनका प्रयोग का भाव भी मानव की समर्पणता को परिभाषित करता है।

लोक–चित्रों में सम्प्रेषणीयता होती है, जो एक चिन्ह या चित्र के माध्यम से प्रगट होती हैं। लोक–चित्रों के सम्बन्ध में सामान्यतः यह कहा जाता है कि लोक–चित्र लिखे जाते हैं। साधारण सा दिखने वाला यह वाक्य अपने में सारगर्भित है। इसका उदाहरण– दीपावली लिखना, हरछठ और करवा चौथ लिखना, अहोई अष्टमी लिखना आदि है। यहाँ यह स्पष्टता आवश्यक है कि लिखना शब्द का प्रयोग भाषा लेखन–कार्य हेतु प्रयोग किया जाता है। किन्तु जब लोक–चित्र बनाते हैं तब ''लिखना'' शब्द का तात्पर्य क्या हो सकता है? वास्तव में जब कथात्मक चित्रों को चित्रित

किया जाता है तब वे कथा–चित्र या लोक–कहानी चित्र बन जाते हैं। उनके पीछे एक या अनेक कथायें विद्यमान रहती हैं। वही कथायें और कहानियाँ लोक–चित्रण को ''चित्र–लिखना'' में परिवर्तित कर देती हैं। लोक–चित्रों की भाषा ही सामान्य जन के जीवन सन्घर्ष तथा उपलब्धियों को प्रदर्शित करती है। वह जीवन के प्राप्य–अप्राप्य तथा दुर्लभता को प्रदर्शित करने की क्षमता भी रखती हैं।

लोक–चित्रों के समान, उनसे सम्बन्धित कथाओं की अत्यन्त सुदीर्घ एवम् समृद्ध परम्परा है। मानवीय सभ्यता और सन्स्कृति के साथ यह पुष्पित एवम् पल्लवित होती रही। इन कथाओं को प्रारम्भ कब से हुआ यह कहना तो असम्भव है किन्तु वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, कथा–सरित्सागर मे विद्यमान पुरा कथायें इनका रूप कही जा सकती हैं। लोक–भाषा में कही जाने वाली धार्मिक कथाओं की भाषा सरल, सहज तथा बोधगम्य होती है। इनकी रचना मे किसी भी शास्त्रीय शैली के लिये स्थान नहीं होता। यह उससे ऊपर होती हैं। इनका विषय मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियों का निषेध तथा सद्–प्रवृत्तियों का समर्थन होता है। समाज से कदाचार समाप्त कर सदाचार की भावना का प्रसार ही इनका उद्देश्य होता है। इनका प्रभाव सम्पूर्ण मानव जाति पर पड़ता है। वे ईश्वर की परम सत्ता के प्रति आस्था भाव जगाकर सामुदायिक भावना को बल प्रदान करती है। यह सामान्य जन की अनुभूतियों को बिना किसी आडम्बर के प्रस्तुत करने में सक्षम होती है। इनमें कथा तत्व का महत्व होता है। यह हमारी लोक–सन्स्कृति की वाचिक धार्मिक परम्परा है, जिसमें स्मृतियां एवम् आशय प्रस्तुतीकरण को सफल बनाते हैं।

इन धार्मिक कथाओं की भाषा तथा विषय वस्तु सम्वेदनात्मक होती है। इनमें प्रेम, विश्वास, क्रोध, घृणा, भय, करूणा, मुस्कान समाहित रहते हैं। लगभग सभी कथाओं में प्रारम्भ में कदाचार से दुःख तथा सन्कट उत्पन्न होते हैं, किन्तु ईश्वर की भक्ति व आशीर्वाद से सदाचार की भावना उदित होती है जिससे इच्छित फल की प्राप्ति होती है। अज्ञानता के नाश से ही ज्ञान का प्रकाश फैलता है, यह सर्वविदित है। ये कथायें इसी बात का द्योतक होती हैं।

भारतीय सन्स्कृति में वर्ष भर धार्मिक पूजा–पाठ चलता रहता है। अवसर विशेष पर किये जाने वाले व्रत–पूजन के साथ धार्मिक कथा या कहानी भी कही जाती है। उस कहानी का रूप व्रत या पूजा के मुख्य उद्देश्य के अनुसार ही होता है। यदि माता पुत्र के लिये व्रत रखकर पूजा कर रही है तो पुत्र की दीर्घायु व मन्गल कामना का भाव कथा में होता है। किन्तु जब पत्नी अपने पति की दीर्घायु हेतु व्रत–उपवास कर रही है तब कथा में पति–पत्नी के आपसी प्रेम, विश्वास और पति की दीर्घायु कामना की भावना निहित रहता है। इसी प्रकार धन, पुत्र या सुख प्राप्ति हेतु भी पूजन किये जाते हैं। उनकी कहानी या कथा भी पूजन के उद्देश्यानुसार ही होती है। हिन्दी साहित्य कोश भाग–9 के अनुसार ''लोक–कथा'' और ''लोक–कहानियाँ'' दोनों की परिभाषाओं में भिन्नता बताई है।

कथा शब्द सामान्यतः कहानी का पर्यायवाची है, इस दृष्टि से तो लोक–कथा और लोक–कहानी में कोई अन्तर नही होगा, किन्तु वस्तुतः ऐसा है नही। कथा शब्द का प्रयोग एक विशेष प्रकार की धार्मिक कहानी के लिये आता है। यह कहा जाता है कि रामायण की कथा हो रही है या इसी प्रकार सत्यनारायण की कथा, गणेश चौथ की कथा आदि। इन प्रयोगों से प्रकट होता है कि कथा कोई ऐसी वार्ता है जो किसी के द्वारा कहकर सुनाई जाती है और उसे सुनने वाले को धार्मिक सन्तोष प्राप्त होता है, धर्मलाभ होता है, अन्य कोई मान्यता पूरी होती है या पूरी करने के लिये सुनी जाती है। ऐसी लोक कथा का बहुधा धर्म गाथा या पौराणिक कथा से सम्बन्ध होता है।

इसी प्रकार पूजा–कहानी के बारे में भी बताया गया है– "एक पूजा–कहानी होती है, उसमें भी धार्मिक अभिप्राय रहता है, पर यह कहानी सामान्यतः पूर्ण रूपेण लोक–कहानी होती है, जिसमें देवी–देवता भी अपने अनोखे रूप में आते हैं। ये पूजा–कहानियाँ प्रायः स्त्रियों में चलती हैं और उनके अन्तर्गत करवा चौथ, अहोई आठें, भैयादूज, अनन्त चौदस, हरछठ आदि अवसरों पर कहीं जाने वाली कहानियाँ आती हैं। कथाओं–कहानियों का सम्पूर्ण स्वरूप कहने व सुनने वाले को आत्म विभोर कर देता है। व्रत–उपवास, अनुष्ठान व लोकोत्सव पर कही जाने वाली कहानियाँ व्रतधारक के आस्था एवम् विश्वास को सन्तुष्टि प्रदान करती हैं। उसे यह सन्तोष होता है कि जिस उद्देश्य से वह धार्मिक पूजन कर रहा है उसमें सार्थकता है। यह मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण मनुष्य की अन्तश्चेतना को बल प्रदान करता है। एक प्रकार से कथा–कहानियाँ लोक–वेद हैं, जिनमें जीवन के सुख–दुःख, विश्वास, चमत्कार एवम् भविष्य की सुखद अनुभूति का समावेश होता है। जो व्यक्ति को कष्ट भोगने की क्षमता तथा कार्य की सफलता हेतु आशावादी बनाती हैं।

लोक चित्रों और सम्बन्धित कथाओं का पूरक तत्व होता है विधि–विधान। विधि–विधान से ही धार्मिक कार्यों की पूर्णता मानी जाती है। प्रत्येक धार्मिक लोक–चित्र में मानव आकान्क्षाओं का चित्रण होता है। उस आकान्क्षा पूर्ति हेतु व्रत–उपवास रखकर ईश्वर के समक्ष लोक–चित्र के अनुसार कथा या कहानी कही जाती है। वेद–पुराणों के अनुसार पूजन विधि–विधान से करना आवश्यक होता है। विधि–विधान मनुष्य को आत्मिक तुष्टि देते हैं, कि जो पूजा उसने की

है उससे सम्बन्धित कामना अवश्य पूरी हो जायेगी। पूजा के विधि–विधान में कई बार विशेष वस्तु प्रयुक्त होती है। जैसे– आसमाई और ऋषि पन्चमी का चित्रण पान के पत्ते पर किया जाता है। हरछठ में भैंस के दूध का दही एवम् घी का प्रयोग अनिवार्य होता है। यह सभी बातें पूजा को विशेष बनाती है। कई बार पूजा में विशेष नियम भी होते हैं। जैसे– निर्जला व्रत, चन्द्रमा को अर्ध्य देने के बाद व्रत तोड़ना आदि। विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा करते समय भिन्न–भिन्न प्रसाद चढ़ाना भी नियम के अन्तर्गत आता है। कुछ पूजन अधिक समय या दिवस तक भी चलते हैं। उनके पारम्परिक विधानों को नियमपूर्वक करना प्रत्येक साधक के लिये आवश्यक होता है। जैसे– दीपावली का पूजन, नवरात्रि का अनुष्ठानिक पूजन आदि। अनुष्ठानों में कठोर नियमों के पालन से ही साधक की मनोकामना पूर्ण होती है, ऐसा विश्वास है।

लोक–चित्रों का स्वरूप और आवश्यकता

मनुष्य जिस ईश्वर की पूजा करता है उसके साकार रूप के दर्शन भी करना चाहता है। इस भावना में सहायक होती है, उसकी कलात्मक अभिरूचि जो भावनाओं को साकार रूप प्रदान करती है। सभी महिलायें चित्रकार तो होती नहीं है, तो वह अपनी परम्पराओं तथा सीमित साधनों में कल्पना के आधार पर पूज्य देवी–देवता को चित्रित करती है। प्राचीन काल में वर्तमान के समान छपाई का सुन्दर कार्य नहीं होता था। स्त्रियां स्वयम् ही अपने घर की भूमि–भित्ति पर मनचाहे आकारों को गढ़ती थी।

समाज में व्याप्त लोक चित्र–कला महिलाओं के गुण में सम्मिलित थी। यह शुभ चित्र घर में देवी–देवताओं के सन्रक्षण के प्रतीक माने जाते थे। घर की लिपी–पुती दीवारों पर यह चित्र वर्ष भर बने रहते थे, इस कारण स्त्रियां बहुत रूचि तथा सम्पूर्ण योग्यता से इन्हें सुन्दर बनाने का प्रयास करती थीं। पास–पड़ोस और सगे–सम्बन्धियों में सभी स्त्रियों में त्योहार पर गृह–सज्जा एवम् लोक–चित्रण में प्रतियोगी भावना भी थी। एक दूसरे की कला को देखने–परखने से समाज में उल्लास तथा प्रेम का वातावरण बना रहता था।

लोक चित्रण की विशेषतायें

1 महिलायें ही प्रमुख कलाकार होती हैं। यह उनके एकरस जीवन में नवीनता का सन्चार करते हैं।

2 यह अस्थायी होते हैं।

3 अवसर के अनुकूल चित्रणों में भिन्नता पाई जाती है। चित्रण की साज–सज्जा भी कल्पना व योग्यतानुसार की जाती है।

4 चित्र रचना के माध्यमों पर ऋतु परिवर्तन का प्रभाव भी पड़ता है।

5 पवित्र स्थान जैसे– पूजागृह की भूमि या भित्ति पर बनाये जाते हैं। सामान्य स्थान आन्गन या घर के प्रमुख द्वार पर भूमि–चित्रण करने से पूर्व गोबर से स्थान लीपकर पवित्र किया जाता है।

6 चित्रण करते समय शारीरिक एवम् मानसिक स्वच्छता का ध्यान रखा जाता है। व्रत धारिणी स्त्रियां स्नान आदि से निवृत्त होकर चित्रण करती है।

7 लोक–चित्रण करने वाली स्त्री को चित्रण की विधि, माध्यम, पूजन विधान तथा सम्बन्धित कथा का ज्ञान होता है।

8 लोक–चित्रण में श्रद्धा तथा धैर्य होना अत्यंत आवश्यक है।

9 पूजा से पूर्व धार्मिक लोक–चित्रों को मिटाना मान्यताओं के विपरीत माना जाता है।

10 लोक–चित्रों को पूजा के बाद मिटाने की या सामग्री को ''सिराने''(विसर्जित करना) का भी निश्चित प्रावधान होता है।

11 अधिकान्श चित्रों और पूजा से सम्बन्धित मूर्तियां तथा सामग्री को वर्ष पर्यन्त रखकर फिर विसर्जित किया जाता है।

12 लोक चित्रण सदैव चौकोर, आयताकार अथवा गोलाकार सीमारेखा के मध्य किया जाता है।

13 चित्रण में सन्ख्याओं का ध्यान भी रखना अनिवार्य होता है। जैसे– सात, पांच या नौ पुतरियां, भुंजरिया के नौ दोने, सुराती के सोलह कोठा, सुरेता के नौ कोठा, छः भाईयों की एक बहन, देवरानी–जेठानी इत्यादि को चित्र कथानुसार सन्ख्या में निश्चित होते है।

14 कुछ लोक चित्र एक दिन में पूर्ण नही हो पाते तब उन्हें निश्चित दिवस से कई दिन पहले से बनाया जाता है। किन्तु कुछ विशेष भाग छोड़ दिया जाता है जिसे पूजन वाले दिन ही बनाया जाता है जैसे– करवा चौथ, हरछठ, जन्माष्टमी, अहोई अष्टमी आदि।

15 कृत्रिम रन्गों का प्रयोग पारम्परिक नही माना जाता है। रन्गों को प्राकृतिक रूप से तैयार या प्राप्त किया जाता है। जैसे– हल्दी, महावर, सिन्दूर, रोली तथा चन्दन आदि।

लोक चित्रण, अवसर व कथायें

लोक चित्र अनेक प्रकार से बनाये जाते हैं किन्तु वर्णन की सुविधा से उन्हें तीन भागों में विभाजित करेंगें।

1) भूमि–चित्रण

2) भित्ति–चित्रण

3) अन्य वस्तुओं पर चित्रण

भूमि चित्रण

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के भूमि चित्रण में गोबर व मिट्टी का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है।

चौक पूरना

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के भूमि चित्रण में प्रत्येक शुभ अवसरों पर ''चौक–पूरना'' अनिवार्य है। यह आटे या सूखे रन्गों से बनाया जाता है। इसे ''चौक डालना'' भी कहते है। चौक–पूरना में ''पूरना'' शब्द पूर्णता का अपभ्रन्श प्रतीत होता है जो चौक अर्थात् आन्गन या चारों दिशाओं की पूर्णता का भाव प्रगट करता है। यह चौक नित्यव्रत, नैमित्तिक व्रत–त्योहार तथा सोलह–सन्स्कारों के प्रत्येक चरण पर बनाये जाते हैं। सभी परिवारों में पारम्परिक चौकों को बनाना शुभ माना जाता है। ''चौक'' का चित्रांकन, बनाने वाली स्त्री की कल्पना शक्ति तथा कलात्मकता का घोतक होता है। सन्स्कारों के समय चौक घर की वरिष्ठ महिला या ''खबासिन''(नाई की पत्नि)/नाइन डालती है। मृत्यु सन्स्कार के पश्चात् शव के जाने के बाद रिक्त स्थान पर गोबर से लीपकर चौक पूरी जाती है।

चौक कई आकारों की होती है– जैसे चर्तुभुजी, छः या सात कोणीय, फूलदार चौक, अष्टकोणीय और नौ ग्रहों की प्रतीक नौ–खण्डीय चौक आदि। चौक चक्राकार या गोलाकार भी होती है। चौक बनाने में शुभ चिन्हों का प्रयोग अवश्य होता है। कलश, स्वास्तिक, आड़ी, सीधी व गोलाकार रेखाओं का प्रयोग होता है। पितृपक्ष में भी घर के मुख्य द्वार पर प्रतिदिन ''उरैन'' (गोबर से लीपकर) डालने की परम्परा है। उस पर चौक भी बनाया जाता है, उस चौक में पितृों के चरण बनाये जाते हैं। इसी प्रकार देवठान और दीपावली की चौक में प्रभु चरण बनाये जाते हैं। होली पर रन्गों से चौक बनाने की परम्परा है। चौक बनाने की प्रक्रिया में ''चुटकी''(अंगूठे और तर्जनी उन्गली की पकड़) की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लकीरे सरलता से खीन्ची जाती है। यह मुक्त हस्त कला है। इसका आधार केवल स्मृति होती है। महिलायें अपनी स्मृति के आधार पर ही विभिन्न प्रकार के चौक बनाती है। कभी–कभी नवीनता देने के लिये कल्पना का सहारा भी लेती है। जिससे चौक की सुन्दरता बढ़ जाती है। कुछ पूजा ऐसी भी होती है, जिसका चौक पारम्परिक

होता है। उसमें फेर–बदल की सम्भावना नही होती है। उन्हें पारिवारिक और सामाजिक नियमानुसार ही बनाया जाता है। विवाह के अवसर पर बनने वाली चौक मंडप के नीचे पन्डित बनाता है।

भित्ति चित्रण

बुन्देलखण्ड क्षेत्र की लोक चित्रकला में अनेक भित्ति चित्रण हैं। ईश्वर की आराधना से श्रद्धा भाव का सम्बन्ध रहता है जिससे पृथ्वी पर किया गया चित्रान्कन दीर्घकाल तक स्थायी नहीं रह पाता। क्योंकि हमारे मन में यह भाव रहता है कि कहीं धार्मिक चित्रण पर हमारे पैर न लग जायें। किन्तु भित्ति चित्रण में यह स्वतन्त्रता रहती है कि यह चित्रण दीर्घकाल तक परिवार में स्थायी रहता है। इसमें प्रयुक्त सामग्री भी अल्प स्थायी या दीर्घ स्थायी होती है। भित्ति चित्रण अधिक कलात्मक होते हैं। इनमें कुछ चित्रों में सघन चित्रण किया जाता है। किन्तु कुछ चित्र केवल पुत्तरिया बनाकर पूर्ण समझे जाते हैं।

चितैरी कला

यह बुन्देलखण्ड क्षेत्र की प्रमुख लोक–चित्रकला है। इसे विवाह के अवसरों पर घर की मुख्य भित्ति मुख्य द्वार के दोनो ओर बनाने का प्रचलन है। चितैरी कला राजस्थान की कला से अभिप्रेरित है। चितैरी कला अपभन्श शैली के बताये गये बारह लक्षणों के अत्यन्त समीप है। जो कलाकार भित्तियों पर चितैरी कला चित्रित करते हैं उन्हें "चितैर/चितेउरे/चितेवरों" कहा जाता है।

चितैरी

मुक्त हस्त चित्रण है। इसके खिलते हुए रन्ग आकर्षक होते हैं। देखने वालों को प्रतीत होता है कि घर में शुभ कार्य सम्पन्न होने जा रहा है। विवाह के अवसर पर गृह सज्जा का यह सुन्दर पक्ष है। चित्रण में श्री गणेश उनके दोनो ओर ऋद्धि–सिद्धि, मूषक मुख्य द्वार की चौखट के ऊपर चित्रित किये जाते हैं। श्री गणेश विध्न–हरण माने जाते हैं। वे शुभ कार्यों को बिना विध्न–बाधा के सम्पन्न करायें तथा परिवार में ऋद्धि–सिद्धि व्याप्त रहे। इसी भाव से यह चित्रण अवश्य कराया जाता है। घर की मुख्य भित्ति चित्रकार का कैनवास होती है। वह मन्डप में वर–वधू, मन्गल कलश, धारिणी स्त्रियां तथा वरमाला लिये वर–वधू को चित्रित करता है। चित्र में लोक वाद्य वादक–नगड़िया, तुरही, रमतूला आदि बजाते दिखाये जाते हैं। वाद्य यन्त्रों के चित्रण से प्रतीत होता है कि मन्गल–ध्वनि बजाई जा रही है। शिव–पार्वती, राधा–कृष्ण, विष्णु–लक्ष्मी आदि देव चित्रित किये जाते हैं। दरबान, बारात का दृश्य जिसमें वर पारम्परिक पालकी में बैठा है इसी प्रकार विदा का दृश्य, जिसमें वधू पालकी में बैठी चित्रित की जाती है। चित्र में सभी स्त्री–पुरूष पारम्परिक वेश–भूषा में दिखाये जाते हैं। स्त्रियां घाघरा, चुनरी तथा पुरुष अंगरखा, साफा या टोपी पहने चित्रित होते हैं। मुख्य द्वार पर बेल–बूटे पत्तियों की बेल बनाकर चित्रण सज्जा के माध्यम से अवसर के अनुकूल वातावरण बनाया जाता है। कभी–कभी चितैरी में हिरन, शेर, हाथी, बाघ आदि का चित्रण तथा युद्ध दृश्य शिकारी, शौर्य तथा पराक्रम प्रदर्शित करते वीर योद्धा शिकारी इत्यादि भी चित्रित किये जाते हैं। चितैरी भित्ति पर ही नहीं वरन् सावनी की मटकियों, मिट्टी के कलात्मक बर्तनों और खिलौनों की साज–सज्जा के लिये भी प्रयुक्त होती है।

इसमें प्रायः दो प्रकार के चित्र मिलते हैं।

प्रथम, दीपावली पूजन के लिये बनाये जाने वाले चित्रपट इन्हें पना कहते हैं। यह कागज के पन्ना पर बने होते हैं। इन पर गणेश लक्ष्मी अथवा लक्ष्मीजी का बुन्देली चित्रकला शैली में अन्कन होता है।

द्वितीय प्रकार के चित्र विवाह या जन्म–उत्सव पर धर की बाहरी दीवाल पर बनाते हैं। इनमें धटघारिणी महिलायें, वर–वधू, अश्वारोही, गजारोही, कलश, सान्तिया मयूर आदि का चित्रांकन होता है।

दोनों प्रकार के चित्र मोटी रेखाओं के बीच गहरे चटख रन्गों से बनाये जाते है। लोक चित्र परम्परा के इन कलाकारों को चितैर/चितेउरे/चितेवरों कहते हैं। झांसी में इनका पूरे का पूरा मुहल्ला चितोरयाना बड़ा बाजार के निकट है।

मन्दिरों तथा भवनों की दीवारों पर भित्ति चित्र बनाने की सशक्त परम्परा इस अंचल में है। इसके साथ ही बन्देली कलम के लघु चित्र (मिनियेचर पेंटिंग्स) भी इसी श्रेणी में आते है। यह लघु चित्र राजस्थानी शैली से प्रभावित है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र के यह लघु चित्र ओरछा शैली तथा दतिया शैली में वर्गीकृत किये जाते है।

चितैरी बनाने में चूने के रन्गों का प्रयोग होता है। रन्गों को पक्का करने के लिये बबूल की गोंद या सरेस पानी में पकाकर तैयार कर मिला देते हैं। रन्गों का प्रयोग चित्रानुसार किया जाता है। प्रमुख रन्ग गुलाबी, नीला, पीला, लाल, नारन्गी, हरा (हल्का, गहरा) होते हैं। चित्र उभारने के लिये काले रन्ग की रेखाओं का प्रयोग होता है। चित्रकार सर्वप्रथम गेरू से पूरी भित्ति पर आधार चिन्ह बना लेता है। तत्पश्चात् चित्र के आकार के अनुसार मुख्य रन्ग लगाता है यह मोटे ब्रश से लगाये जाते हैं। आकृति के चेहरे के लिये गोल, हाथों के आकार के लम्बे धब्बे और पैरों के लिये अण्डाकार छोटे धब्बे चित्रित किये जाते हैं। यह धब्बे गुलाबी या पीले रन्ग के होते हैं। उसके बाद मध्यम मोटाई के ब्रश से मोटी रेखाओं द्वारा आकृतियों की वस्त्र रचना, वस्तु आदि चित्रित करते हैं। इस प्रकार चित्र में मुख्य रन्गों को लगाना टिपाई कहलाता है। उसके बाद चित्र को उभार देने के लिये पतले ब्रश की सहायता से काले रन्ग की रेखायें बनाई जाती हैं। जिससे आकृति की रचना स्पष्ट हों जाती है। इसे चित्रण शैली में खुलाई कहा जाता है।

चितैरी की विशेषता है कि रन्ग सूखने की प्रतीक्षा किये बिना ही कलाकार दूसरे रन्ग का प्रयोग करता है। एक बार में एक रन्ग ही प्रयुक्त किया जाता है। चितैरी कला का प्रयोग भित्ति चित्रण के अतिरिक्त कागजों पर भी करते हैं। दीपावली तथा जन्माष्टमी के पना(पन्ना) बनाने में इस कला का पारम्परिक प्रयोग किया जाता है। चितैरी कला के चित्र अपने आकर्षक रन्ग–विन्यास तथा चित्रण के साथ परम्परागत रूप में बुन्देलखण्ड क्षेत्र के घरों की भित्तियों पर सजे रहते हैं। चित्रों के साथ स्वागतम शुभ–विवाह आदि शुभ शब्दों को भी लिखा जाता है।

<u>ढरकौना</u>

यह गेरू से निर्मित शुभ प्रतीक चिन्ह है जिन्हें ढरकौना कहा जाता है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में देवस्थानों, लोक–देवताओं के चबूतरों, मढ़ियों तथा घर के मुख्य द्वारों पर भी ढरकौना देखने को मिल जाता है। ढरकौना बुन्देली शब्द है इसका शाब्दिक अर्थ है ''ढरक आना'' (नीचे की ओर बहना या गिरना) इसी शाब्दिक अर्थ का पर्याय ढरकौना होते हैं। इसमें गेरू व पानी तथा रूई का प्रयोग होता है। गेरू को पानी में घोलकर थोड़ी सी रूई उसमें भिगो देते हैं। जहाँ ढरकौना लगाने होते हैं वहाँ भित्ति पर उचित उँचाई पर रूई को रखकर उंगलियों से दबाते हैं। रूई मुख्य स्थान पर गेरू का गोल धब्बा बनाती है तथा उसका शेष गेरू स्वयम् नीचे की ओर बह जाता है। इस प्रकार ढरकौना अपने नाम के अनुरूप बन जाते हैं। दीपावली व देवठान पर घर के मुख्य द्वार के दोनो ओर ढरकौना लगाये जाते हैं। यह 5, 7, 9 या 11 सन्ख्याओं में लगाये जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में यह घर से बाहर की पूजा, जैसे– देव स्थानों या लोक–देव स्थानों पर अवश्य लगाये जाते हैं।

<u>साँझी</u>

साँझी, श्राद्ध पक्ष में आश्विन कृष्ण पक्ष में भूमि पर चित्रान्कित की जाती है। प्रथम दस दिन गोबर व फूलों से सजाई जाती है और शेष पान्च दिन रन्गों से बनाई जाती है। यह वास्तव में ब्रज का लोक–चित्रान्कन है किन्तु बुन्देलखण्ड क्षेत्र का कुछ भू–भाग विशेषतया दतिया, ब्रज क्षेत्र से सर्वाधिक प्रभावित रहा है। इस कारण वहाँ साँझी का चित्रान्कन देखने को मिल जाता है। जब कोई लोक–कला एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित होती है तब उसका लोक रूप परिवर्तित हो जाता है। इसी तरह साँझी भी परिवर्तित रूप में पाई जाती है। सान्ध्य बेला में चित्रान्कन करने के फलस्वरूप इसे साँझी कहते हैं।

<u>नारी श्रृन्गार</u>

इसके अन्तर्गत महिलायें मेंहदी अथवा महावर का कलात्मक अन्कन करती हैं। इसे भी <u>लोक चित्रकला</u> में परिगणित किया जाता है।

<u>व्यवसायिक लोक चित्रकला</u>

इसके अन्तर्गत व्यवसायिक स्तर पर विभिन्न अवसरों पर चितेवरों द्वारा बनाये जाने वाले चितौरी लोक कला चित्र मन्दिरों अथवा अन्य भवनों में बने भित्ति चित्र, बुन्देली कलम के लघु चित्र (मिनियेचर पेन्टिंग्स) तथा गुदनारियों द्वारा बनाये जाने वाले गोदना आते है।

<u>गोदना</u>

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

आदिवासी जातियों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं तथा कहीं कहीं पुरूषों के शरीर पर गोदी जाने वाली कला है। शरीर के विभिन्न अंगो पर धार्मिक प्रतीक चिन्ह, प्राकृतिक चिन्ह, ज्यामितीय रेखान्कन अथवा नाम (स्वयम् का, इष्टदेव अथवा जीवन साथी का) का अन्कन, तोणियों के पत्ते का रस या अकौवा का दूध कजली के साथ मिलाकर गोदना लेप बनाकर, किया जाता है। इन्हें अन्कित करने वाली महिलाओं को गुदनारी कहते हैं।

इन सन्रचनाओं में जबर्दस्त कलाबोध है। परम्परा की इस विरासत में प्रतीको का सुन्दर प्रयोजन–मूलक तथा सुरुचिपूर्ण समावेश है। इनमें अनेक प्रतीक प्रयोग किये जाते हैं तथापि कुछ प्रतीक अधिकान्श आलेखनों में मिलते हैं। यहाँ उनके अर्थ तथा भाव–बोध की चर्चा प्रासन्गिक है।

सान्तिया (स्वस्तिक)

यह गणेश जी का लिपीय स्वरुप है। यह गतिशीलता का प्रतीक है। क्षेम एवम् विघ्नरहित कार्यों के प्रतीक रुप में चित्रित किया जाता है। गणेश जी का चित्र न बनाकर स्वस्तिक (सान्तिया) बना दिया जाता है। इसका अर्थ है स्वस्ति (यानी मन्गल) करने वाला। चक्राकार सान्तिया भी इसी का विकसित रुप है। स्वस्तिक अनेक धर्मा में आस्था का प्रतीक है। ईसाई धर्म का क्रास इसी क्रम में गिना जाता है।

दीपक

यह सहजता, पावनता, शुभ्रता, सात्विकता तथा अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने का प्रतीक है। इसकी ज्योति ज्योति–लक्ष्मी का प्रतीक है।

कमल व शन्ख

यह पवित्रता और ज्ञान के प्रतीक हैं। यह सिन्धुज होने के कारण लक्ष्मी के अनुज हैं। जहां यह रहेंगे, लक्ष्मी का आगमन होगा ही। यह उत्पादक शक्ति, शुचिता, अलिप्तता तथा शाश्वत–शोभा के प्रतीक हैं। बंगाल तथा कुछ अन्य प्रान्तों में शन्ख की चूड़ी दाम्पत्य पवित्रता के रुप में पहनी जाती है।

सूर्य तथा चन्द्र

यह दोनों शाश्वतता, चिरन्तनता, तथा पवित्रता क प्रतीक है। सूर्य तेजस्विता, गतिशीलता, जीवंतता तथा अन्न जलदाता होने के कारण जगपालक होने तथा आरोग्यता का प्रतीक है। पूर्ण सान्द्र पूर्णता का प्रतीक है।

कलश तथा घटधारिणी महिला

कलश सम्पन्नता, परिपूर्णता तथा सम्मान का प्रतीक है। घटधारिणी महिलायें समृद्धि वाहक–देवी (घट लक्ष्मी) का प्रतीक हँ।

गज तथा अश्वारोही

यह समृद्धि एश्वर्य, शक्ति–सम्पन्न तथा सामर्थ्यवान के प्रतीक हैं। श्री सूक्त में इनकी गणना श्री के विविध रुपों में की गई है।

पैरों के निशान

श्रीचरण अथवा लक्ष्मी के शुभागमन के प्रतीक हैं।

हथेलियों की छाप

पन्चतत्वों की समग्रता, पन्चों की साक्षी, पारिवारिक एकता सात्विकता तथा दो हाथों की छाप युगल सहयोग की प्रतीक है।

लोक चित्रकला **Folk Painting Art**

<u>सीढ़ी</u>

उत्तरोत्तर प्रगति का द्योतक है।

<u>मोर</u>

जीवन में सौन्दर्य–बोध एवम् रुचि–विविधा का प्रतीक है।

इन अर्थों को समझने के बाद हम इन आलेखनों को गौर से देखें। उदाहरण के लिये शिशु जन्म पर दरवाजे के बाहर दीवाल पर गोबर लीपकर गोबर से बनाये गये चक्राकार–सान्तिया (भये के सान्तिया) की ओर देखें– यह गोबर से बनाते हैं तथा थोड़ी थोड़ी दूर पर जौ के दाने इस प्रकार चिपकाते हैं कि उनका एक नुकीला भाग बाहर की ओर निकला रहे। इसमें गोबर देशज तथा पवित्रता का प्रतीक है। घर में जनन अशौच से जो अपावनता आ जाती है, गोबर उसका निदान तथा पर्यावरण शोधक है। जौ धन धान्य का प्रतीक है। इसके नुकीले भाग सान्सारिक बाधाओं से सन्घर्ष के प्रतीक हैं। चक्राकार सान्तिया गतिशीलता प्रगति तथा गणेश जी का लिपीय स्वरुप होने के कारण विघ्न विनाशक का प्रतीक हैं। इस प्रकार शिशु जन्म पर बना यह आलेखन विघ्न विनाशकता, परिवार की प्रगति, साहसिकता, धनधान्य वृद्धि तथा समृद्धि का सन्देश–वाहक है।

लोक–चित्रकला के कुछ उत्सव जिनके चित्र प्रस्तुत है।

देवठान एकादशी

कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष ग्यारस(एकादशी) को देवठान एकादशी मनाई जाती है। इस दिन आँगन की भूमि को गोबर से लीप कर उस पर गेरू, चूने या आटे से चतुर्भुजी चौक पूरी जाती है। उसके मध्य में प्रभु चरण बनाये जाते हैं। उस निश्चित आकार की चौक को महिलायें इच्छानुसार कलात्मक रूप से जितना बढ़ाना चाहती हैं, बढ़ा देती हैं। घर के मुख्य द्वार की ड्योढ़ी, अन्य कमरों तथा पूजागृह की ड्योढ़ी पर भी अनेक कलात्मक भूमि चित्रण किये जाते हैं। इनका अर्थ सामान्य रूप से यही माना जाता है कि भगवान घर के प्रत्येक स्थान पर शुभागमन करें। कहीं–कहीं पूजागृह से चौक तक प्रभु चरण बनाये जाते हैं। देवठान का पूजन सान्ध्य बेला के पश्चात् किया जाता है। चौक के ऊपर गन्ने का मन्डप बनाया जाता है। आन्गन में बनी चौक पर पूजागृह से भगवान लाकर बिठाये जाते हैं।

उठो देव, उठो देव, क्वॉरन के ब्याव होंय, ब्याहतन के चलाय हौय।



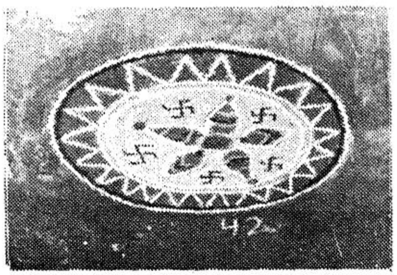
देवठान

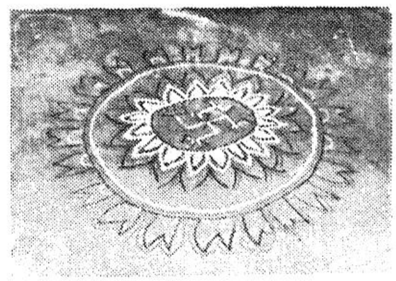
फूलचौक

पुन्सवन सन्स्कार   सादन की चौक

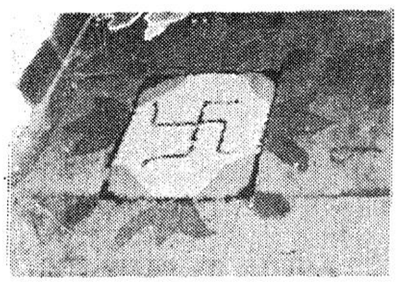
दस्टौन–

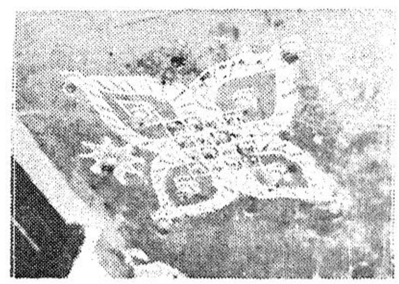
घर से कुँऐ तक रास्ते मे 7 चौक   दूल्हे को मुख्य द्वार चौक   विवाह में लगभग प्रत्येक अवसर पर "चौक पूरना





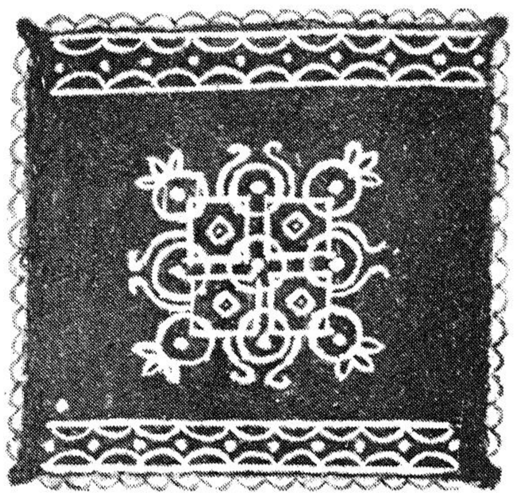
चौक पूरना





उरैन

"उरैन" का शाब्दिक अर्थ है उर (ह्रदय) मे रैन (रहना) अर्थात् हदय में रहना। प्रातःकाल घर के मुख्य द्वार की भूमि को गोबर और थोड़ी मिट्टी मिलाकर लीपते हैं। यह लिपाई चौकोर आकार में करते हैं। उंगलियों के पोरों की सहायता से उस चौकोर आकार के चारों कोनों को थोड़ा सा बाहर निकाल देते हैं। महिलायें सुन्दरता की दृष्टि से कभी–कभी उरैन के चारो ओर गोबर से ही गोलाकार या आड़ी तिरछी रेखाओं से सुसज्जित कर देती हैं। उस लीपे हुये स्थान पर आटे या सूखे रन्गों से चौक बनाये जाते हैं। श्राद्ध पक्ष या पितृपक्ष में प्रतिदिन उरैन डालना आवश्यक होता है। इसके पीछे यह भावना रहती है कि क्वार मास कृष्ण पक्ष में स्वर्ग से पितृों का आगमन पृथ्वी लोक पर होता है। उनके लिये यह उरैन स्वागत का प्रतीक माना जाता है। पितृ पक्ष में बनाये गये उरैन में, पितृ आगमन के प्रतीक चित्र बनाने की परम्परा है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पितृ पक्ष को ''कनागत''(कर्णागत) भी कहा जाता है। कर्णागत अर्थात् कर्ण का आना या कर्ण आये। इसी सम्बन्ध में कथा भी प्रचलित है।



उरैन



पितृपक्ष में उरैन

गोधन

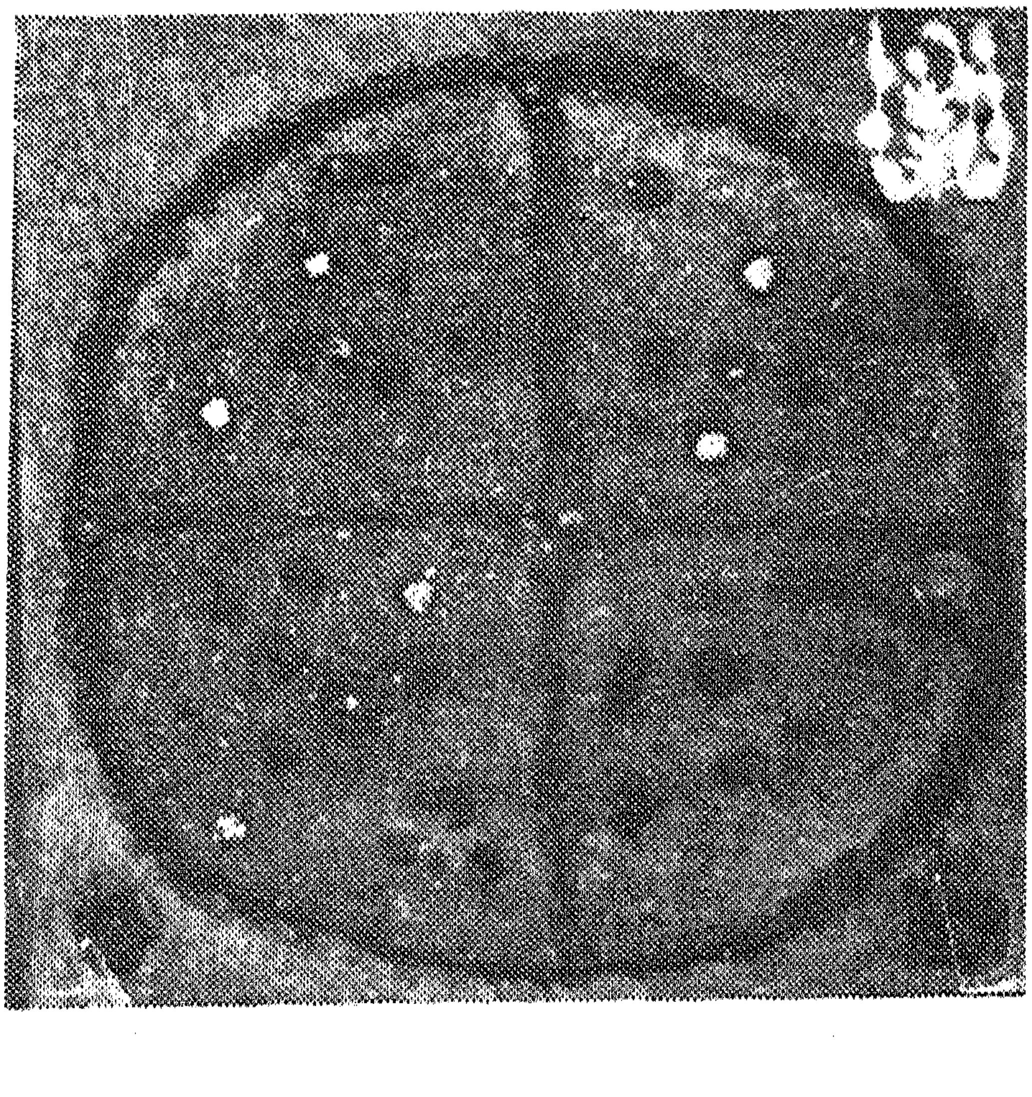
अर्थात् गो–धन या गौ–वर्धन। यह बुन्देली सन्स्कृति में अत्यन्त महत्वपूर्ण चित्रान्कन है।



गोधन

दौज

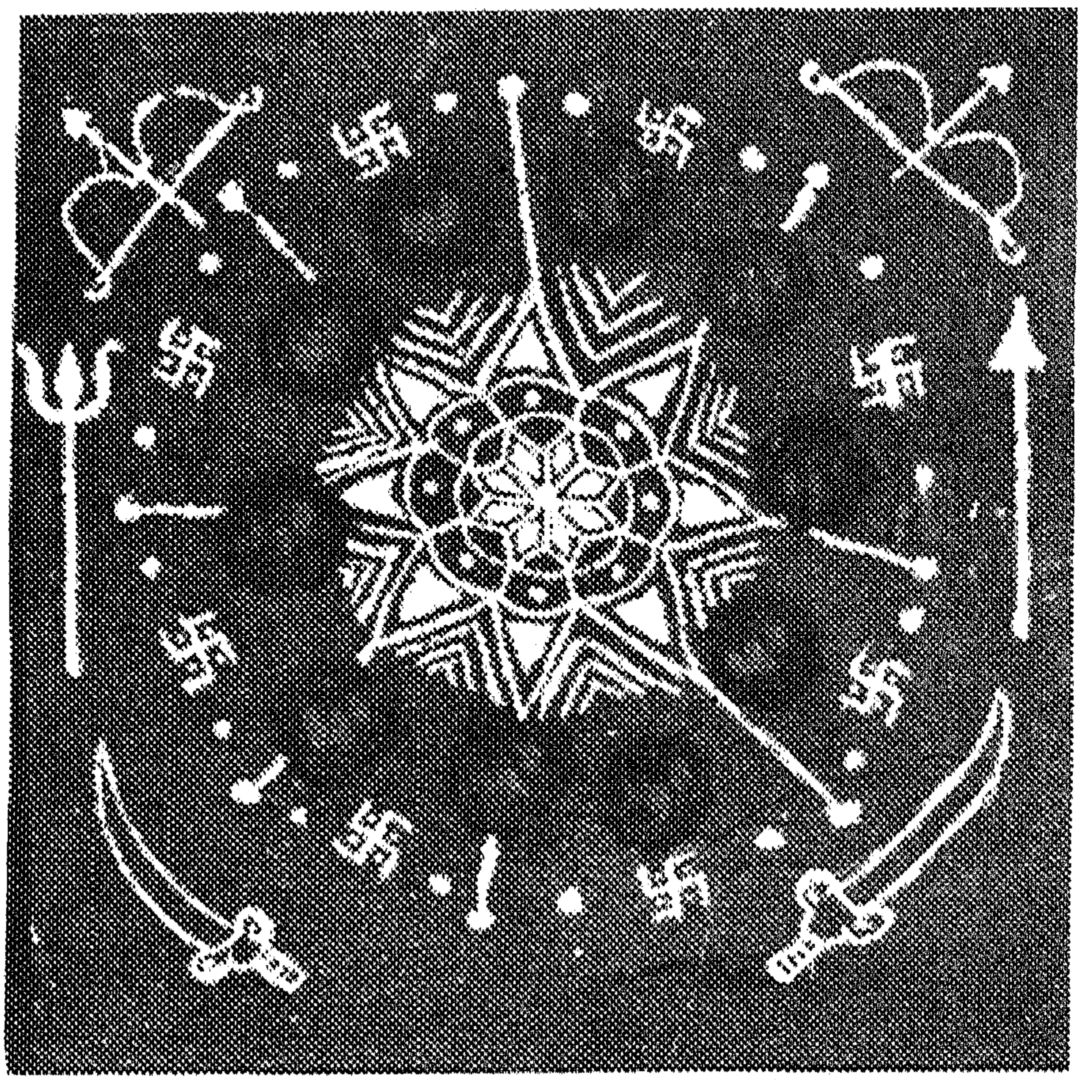
गोबर से बनाई जातीं है। यह घर के मुख्य द्वार के दोनों ओर बनाई जाती है। सर्वप्रथम गोबर की चपटी गोलाकार आकृति बनाई जाती है, इसे धनात्मक चिन्ह द्वारा चार भागों में विभाजित कर दिया जाता है। बीच में जहाँ दोनों रेखायें मिलती हैं, वहाँ देवी आकृति बनाते हैं, जिसे ''दौज माई'' कहते हैं। विभाजक रेखा की समाप्ति पर कुण्ड बनाये जाते हैं। विभाजक रेखाओं के बीच खाली स्थान पर समृद्ध गाँव का दृश्य योग्यता एवम् कल्पना के आधार पर बनाते हैं। जिसमें दूध बिलोती देवरानी–जेठानी, भोजन बनाने तथा धान कूटने आदि का दृश्य, ग्वाले, पशु, पर्वत आदि बनाये जाते हैं।



भाई दौज

दसरैयां

गोबर–पाथने(कंडा बनाने) का क्रम दशहरे से ही प्रारम्भ किया जाता है। इस कारण विशेषतया ग्रामीण क्षेत्रों में दशहरे के दिन घरों में आँगन की भूमि लीप कर उस पर आटे से चौक पूरी जाती है। उस चौक पर गोबर की दस टिकियाँ रखी जाती हैं, जिन्हें ''दसरैंया'' कहते हैं। उन दसरैयों की पूजा काशीफल या तुरई के फूल, ''ऐपन''(हल्दी और चावल का पिसा मिश्रण) तथा अन्य पूजन सामग्रियों से ''दसरैयां'' पूजी जाती हैं यह पूजन गोबर की उपयोगिता एवम् गुणों का आदर प्रदर्शित करता है।

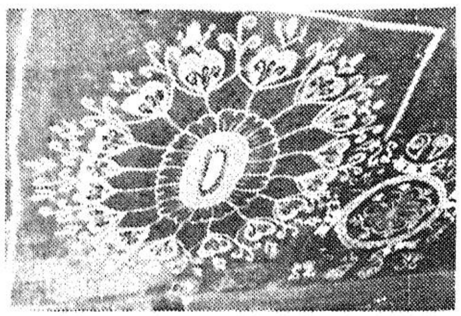


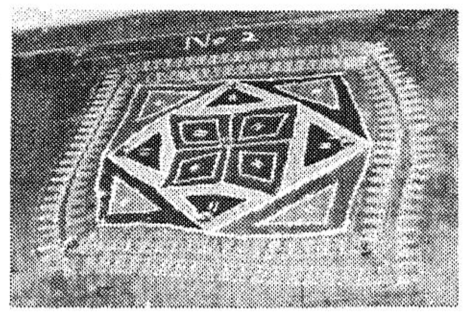
दसरैयां

नौरता नवरात्रि सुआटा

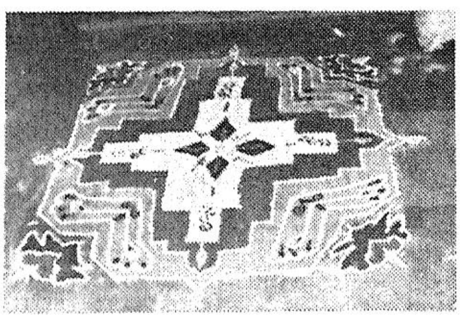
सुआटा के समक्ष प्रतिदिन कन्यायें रन्गीन अल्पनायें या चौक बनाती हैं जो भूमि चित्रण होते हैं। भूमि पर बनाई गई यह अल्पनायें बालिकाओं की कलात्मक प्रतिभा की परिचायक होती है। इन भूमि चित्रणों की विशेषता यह होती है कि उसमें प्रयुक्त रन्ग भी बालिकायें स्वयम् तैयार करती हैं। गहरा लाल रन्ग गेरू से तथा भूरा लाल खपरैल पीस कर तैयार किया जाता है। इसी प्रकार दूधिया पत्थर को घिस कर सफेद रन्ग बनाती है। ईंट से हल्का लाल, हरी पत्तियों को सुखाकर, पीसकर तथा छानकर हरा रन्ग तैयार किया जाता है।

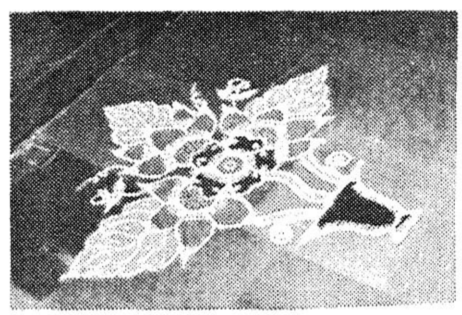
इस प्रकार लगभग सभी रन्ग प्रकृति से तैयार किये जाते हैं। इन अल्पनाओं की विशेषता यह होती है कि प्रत्येक बालिका प्रतिदिन नवीन आकृति एवम् सन्योजन प्रस्तुत करने का प्रयत्न करती है।





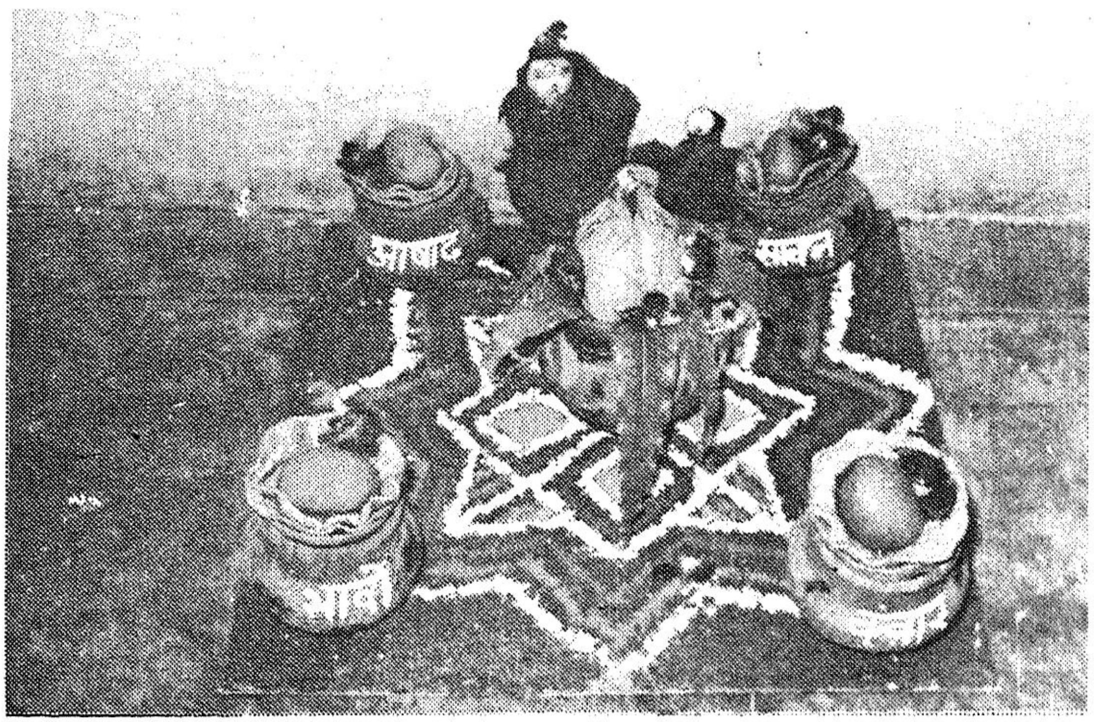
नौरता





अक्ती

बैशाख शुक्ल तृतीया पर भूमि की लिपाई कर चौक पूरी जाती है। मध्य में कलश तथा चार छोटी मटकियाँ रखते हैं। जिनमें क्रमशः आषाढ़, सावन, भादों एवम् क्वार महीनों के नाम भी लिखे जाते हैं। उनका सम्बन्ध वर्षा की स्थिति से होता है।



अक्ती

चितैरी

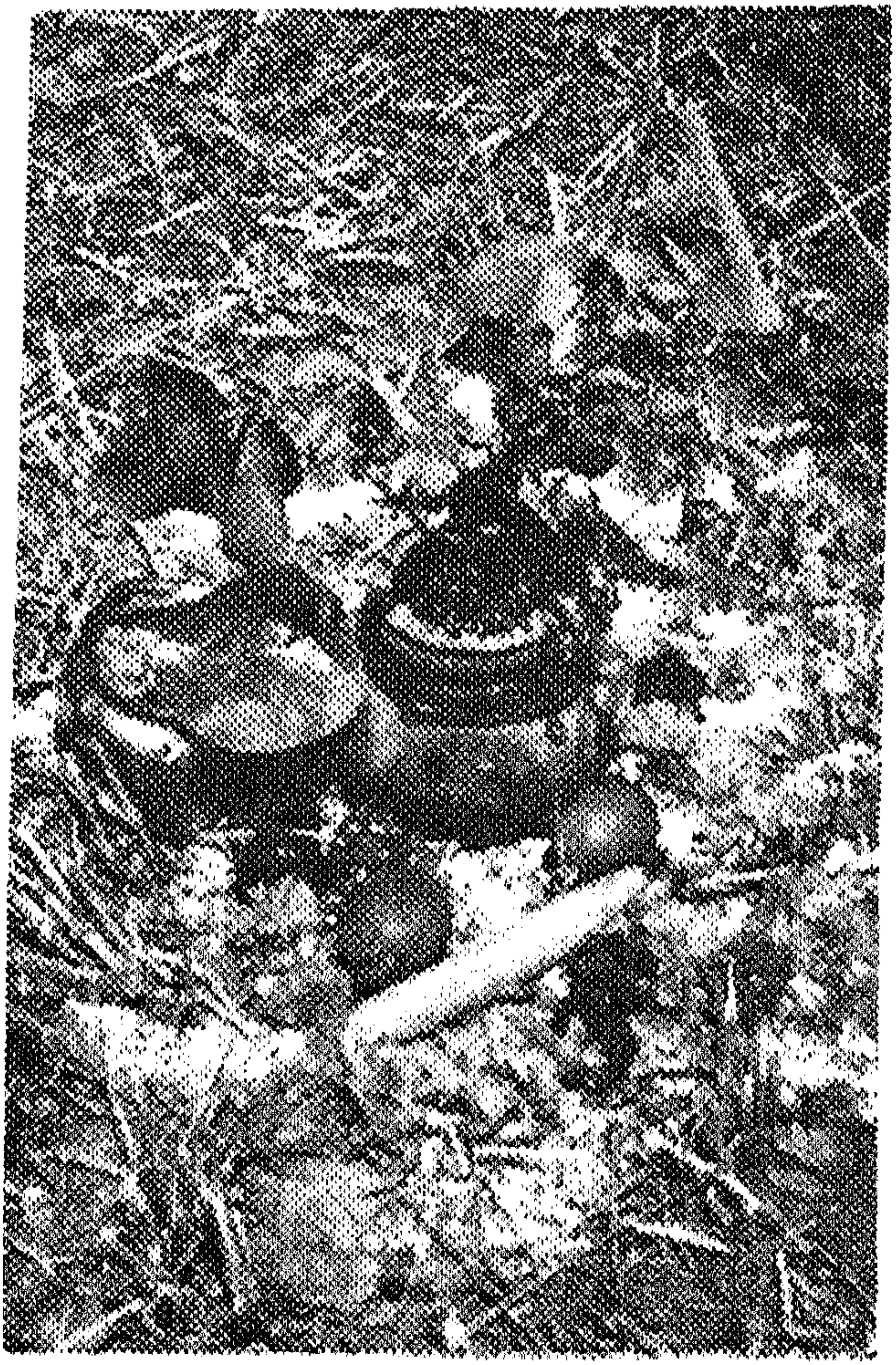
विवाह के अवसरों पर घर की मुख्य भित्ति मुख्य द्वार के दोनों ओर बनाने का प्रचलन है। चितैरी कला राजस्थान की कला से अभिप्रेरित है। चितैरी कला अपभ्रंश शैली के बताये गये बारह लक्षणों के अत्यन्त समीप है। जो कलाकार भित्तियों पर चितैरी कला चित्रित करते हैं उन्हें "चितैरे" कहा जाता है।

चित्र में लोक वाद्य वादक–नगड़िया, तुरही, रमतूला आदि बजाते दिखाये जाते हैं। शिव–पार्वती, राधा–कृष्ण, विष्णु–लक्ष्मी आदि देव चित्रित किये जाते हैं। दरबान, बारात का दृश्य जिसमें वर पारम्परिक पालकी में बैठा है इसी प्रकार विदा का दृश्य, जिसमें वधू पालकी में बैठी चित्रित की जाती है। चित्र में सभी स्त्री–पुरूष पारम्परिक वेश–भूषा में दिखाये जाते हैं। स्त्रियां घाघरा, चुनरी तथा पुरूष अंगरखा, साफा या टोपी पहने चित्रित होते हैं।

कभी–कभी चितैरी में हिरन, शेर, हाथी, बाघ आदि का चित्रण तथा युद्ध दृश्य शिकारी, शौर्य तथा पराक्रम प्रदर्शित करते वीर योद्धा शिकारी इत्यादि भी चित्रित किये जाते हैं।



चितैरी

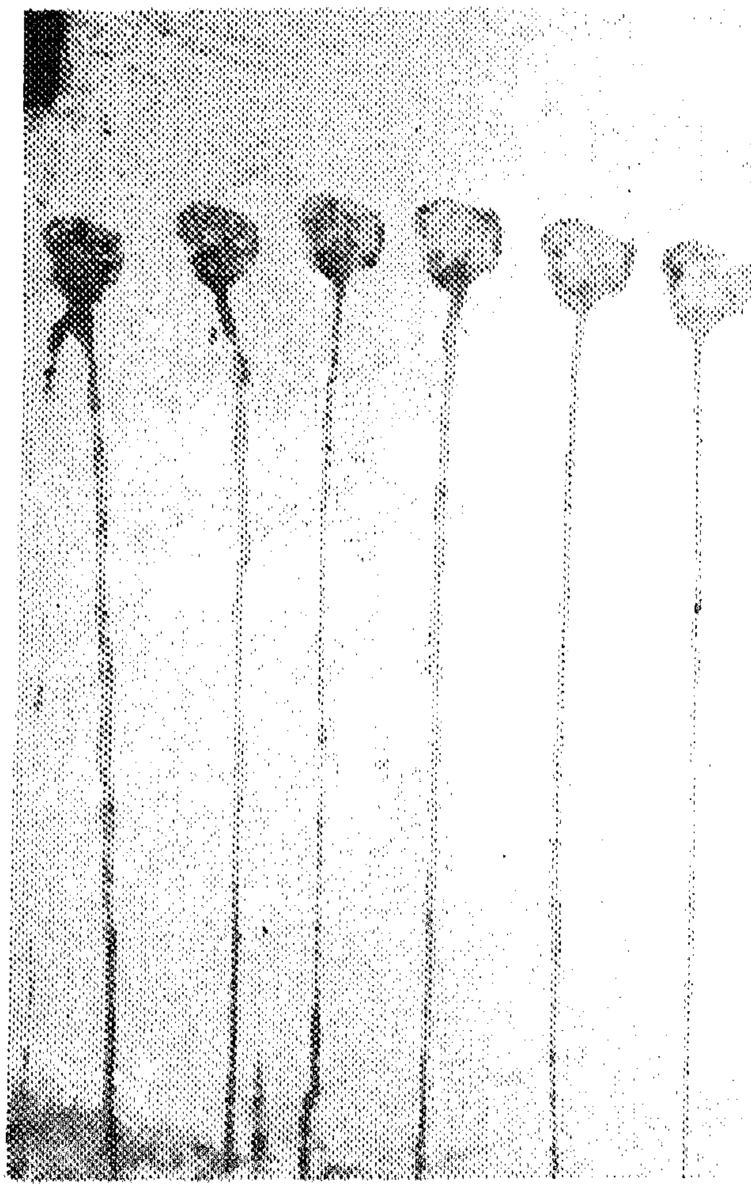


हरायतें

लोक चित्रकला **Folk Painting Art**

ढरकौना

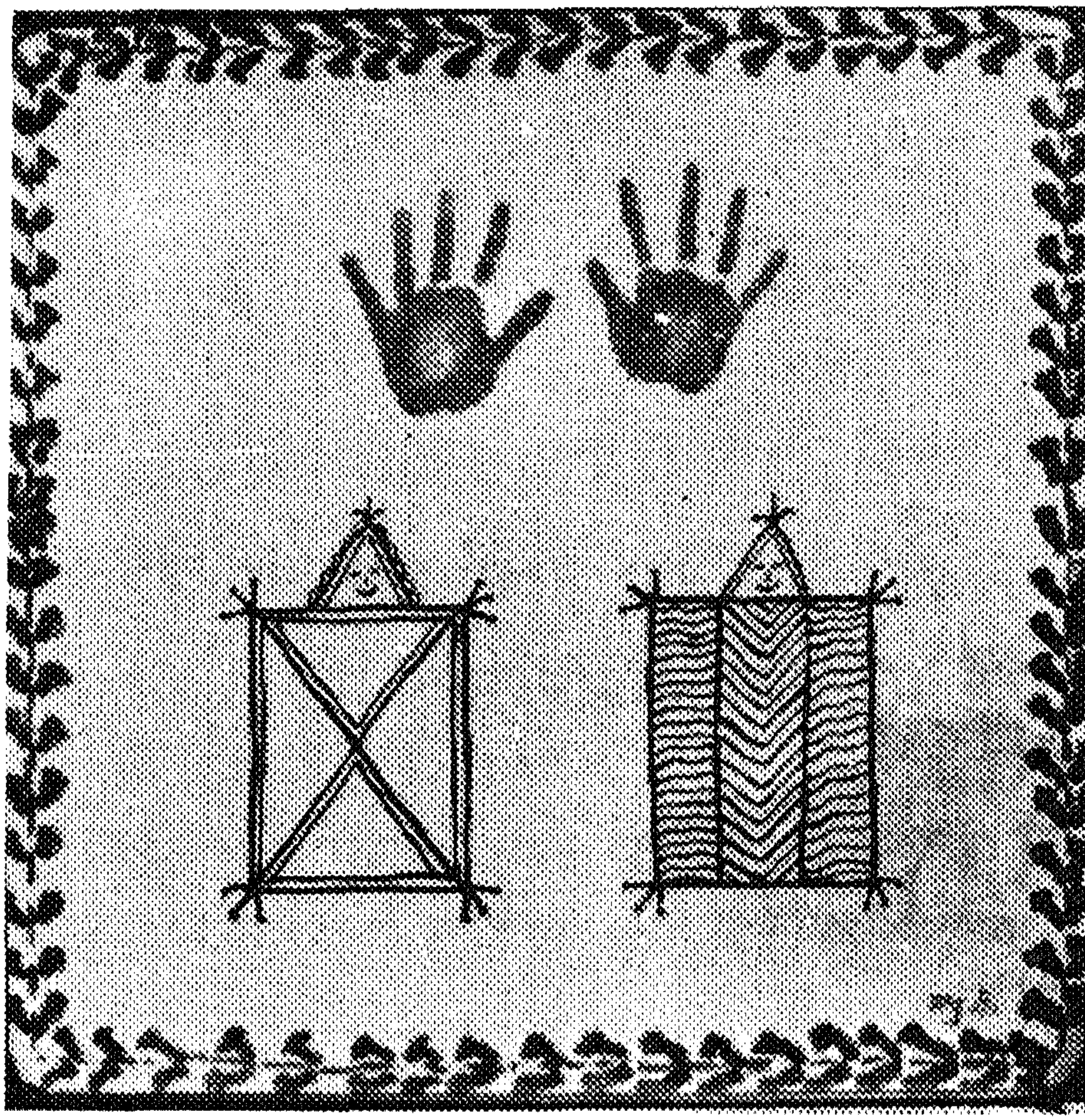
यह गेरू से निर्मित शुभ प्रतीक चिन्ह है जिन्हें ढरकौना कहा जाता है। ढरकौना बुन्देली शब्द है इसका शाब्दिक अर्थ है "ढरक आना" (नीचे की ओर बहना या गिरना)



ढरकोना

आरते–मौरते

घर की कोई सुहागिन महिला गेरु हल्दी या ऐपन से (उपलब्धि या परम्परा के आधार पर) 'आरते–मौरते" बनाती है। यह वर–वधू के स्वागत चिन्ह होते हैं। वे गृह रक्षक तथा स्वागतोत्सुक गृह देवता प्रतीत होते हैं। वर–वधू के आने पर मुख्य द्वार की पारम्परिक रस्मों के बाद वर–वधू हल्दी व पानी के घोल में हाथ भिगोकर भित्ति पर हाथे या थापे लगाते हैं। यह आरते मौरते तथा हाथे यह प्रदर्शित करते हैं।



आरते–मौरते तथा हाथे–थापे

भये के सान्तिया

भये के सान्तिया अर्थात जन्म के अवसर पर बनने वाले स्वस्ति चिन्ह प्रसूति गृह के द्वार की भित्ति पर नन्द गोबर से शुभ चिन्ह अन्कित करती है। उन चिन्हों पर जौ व देवल/दाल के दाने लगाकर सजाया भी जाता है। भये के सातियों में स्वास्तिक चिन्ह आवश्यक है। इसके अतिरिक्त चक्राकार चित्रण किया जाता है वह स्वास्तिक का रूप ही होता है। चक्राकार चित्रण पुत्र जन्म पर बनाया जाता है। पुत्री जन्म की सन्रचना भिन्न होती है, इसमें चतुर्भुज जैसी रचना की जाती है जिसमें चारों दिशाओं को इन्गित करते गोलाकार कोने भी होते हैं मध्य में खाली स्थान में भी एक छोटा चतुर्भुज होता है।

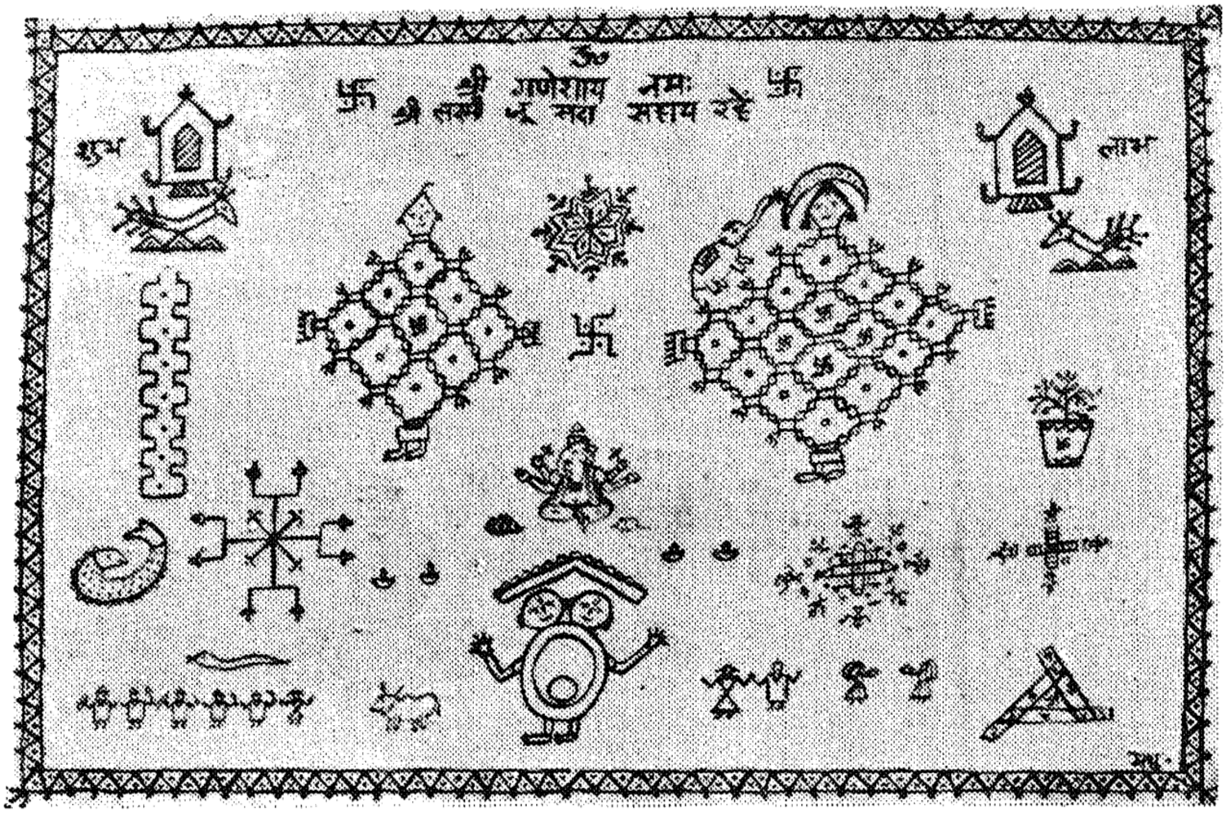
पुत्र जन्म चक्र का अन्तिम छोर खुला पुत्री जन्म के चतुर्भुज चारों दिशाओं से बंद होता है।



भये के सांतिया

सुराती

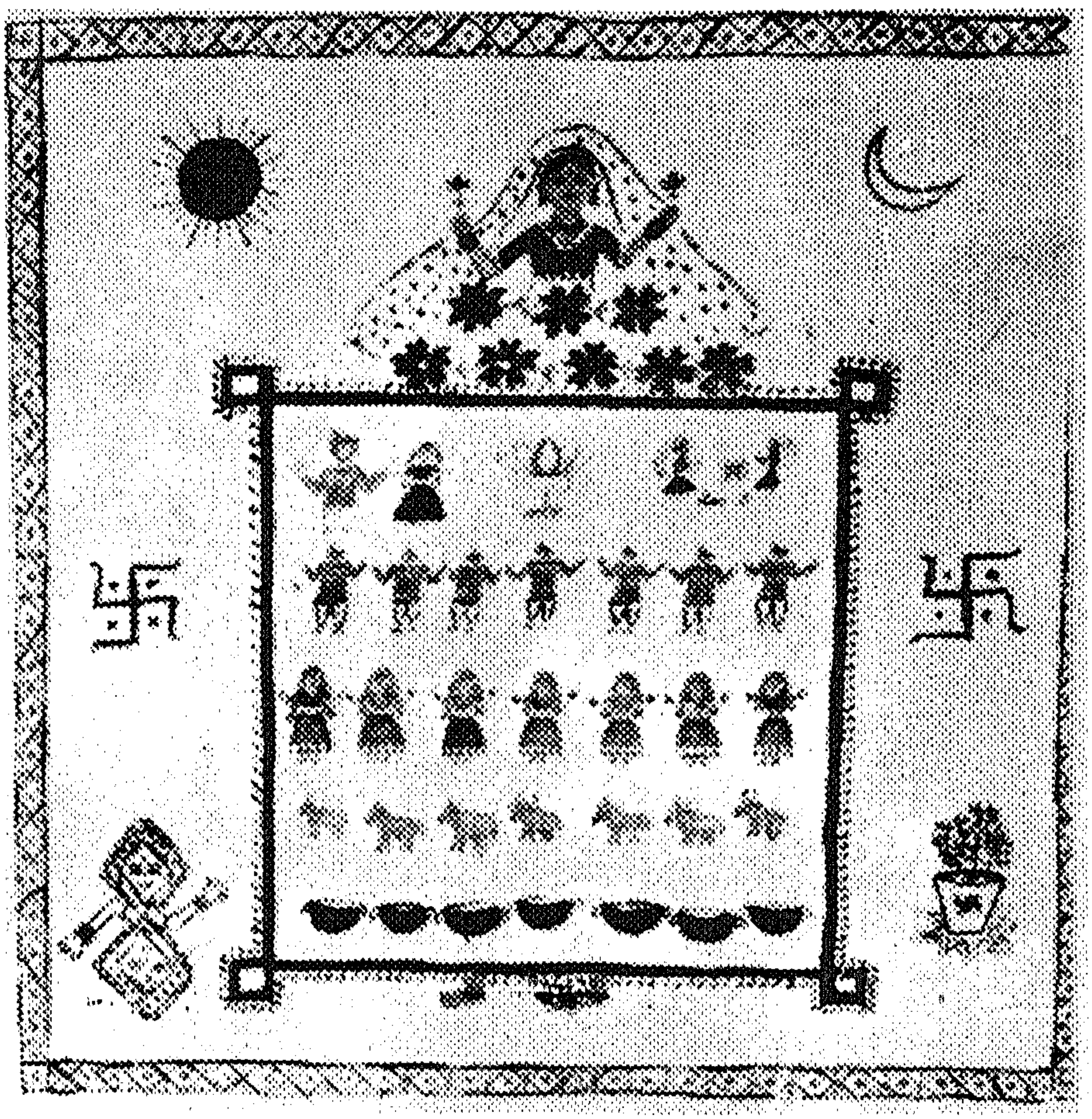
दिवारी चित्रांकन हेतु पूजागृह की भित्ति छुई या खड़िया से पोतकर सूखने के बाद उस पर गेरू को पानी में घोलकर <u>सुराती</u> लिखते हैं।



सुराती

अहोई

अहोई अष्टमी का भित्ति चित्र रन्गीन है। घर मे प्राप्त सामग्री हल्दी, महावर नील, गेरू, सिन्दूर, रज आदि से बनाया जाता है। अहोई माता की मातृत्व भाव का है। देवी का चित्रण स्त्री रूप है। उनका शरीर या लहंगा आयताकार या चौकोर बनाते हैं, उसमें कथानुसार चित्रण किया जाता है। साहूकार, साहूकार की पत्नी उसके सात पुत्र, सात पुत्र वधुयें, धन धान्य से भरे पात्र, पशुधन चित्रित किये जाते हैं। चौकोर आकृति के बाहर गंगा जमुना, तुलसी घरा, देवरानी–जेठानी, सूरज चन्दा इत्यादि चित्रित करते है। कुछ घरों मे यह सारे चित्र सूर्य–चन्द्रमा को छोड़कर देवी के शरीर आकृति चौखाने के भीतर ही चित्रित किये जाते हैं।



अहोई अष्टमी

करवा चौथ

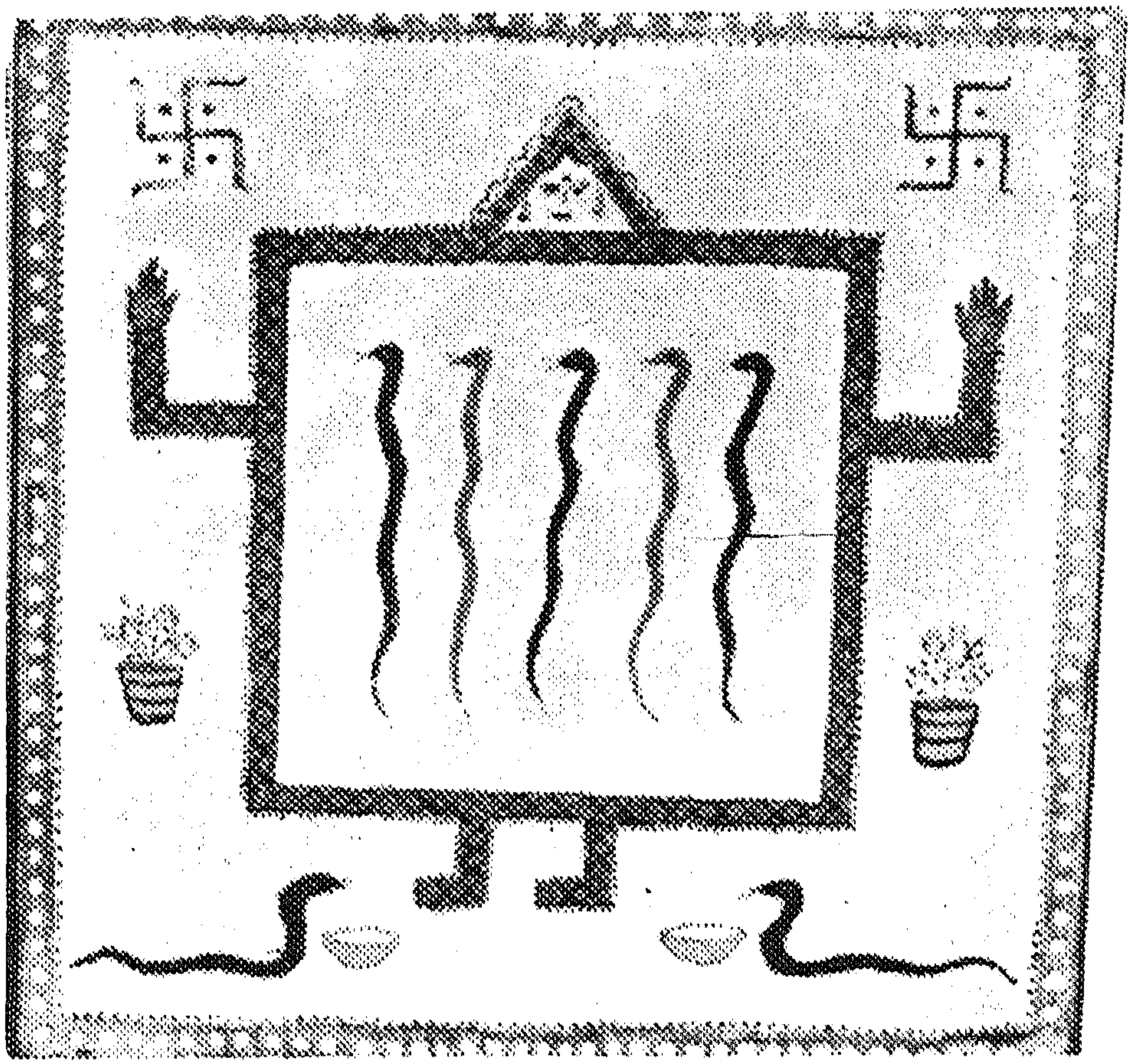
करवा चौथ का भित्ति चित्रण किया जाता है।



करवा चौथ

नागपन्चमी

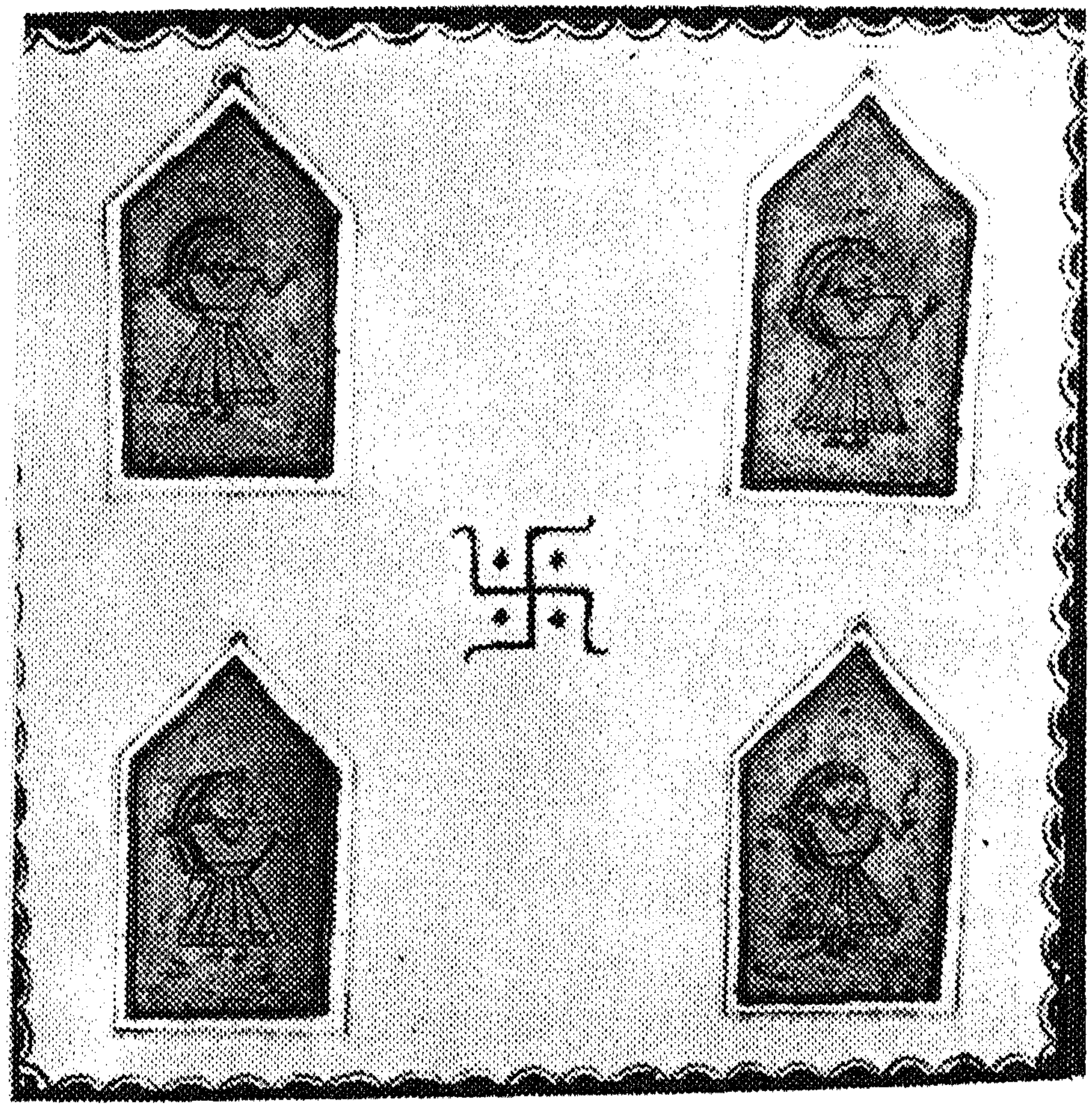
घर के बाहर की मुख्य भित्ति पर चित्रण किया जाता है और कहीं पूजा गृह की भित्ति पर सर्प चित्रण करते हैं। भित्ति चित्रण मे गेरू, कोयला या गोबर का प्रयोग करते हैं। चूने से पुती दीवार पर एक चौखाना बना कर उसमे पाँच या सात सर्प चित्रित किये जाते है। कभी कभी चौखाने के बाहर भी सर्प चित्रण होता है।



नाग पंचमी

कुनघुसूं पूने

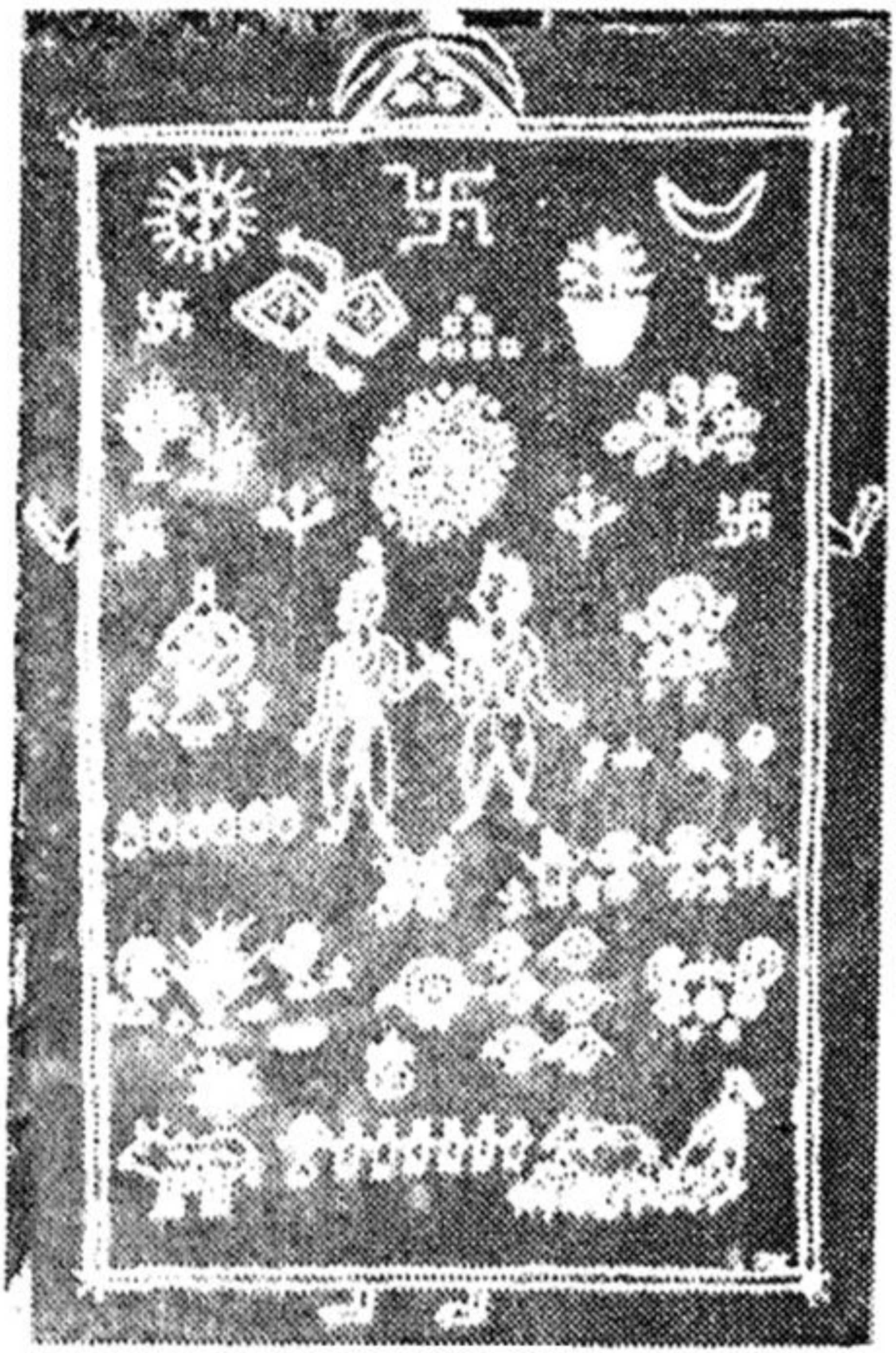
भित्ति चित्रण घर की वरिष्ठ महिला द्वारा किया जाता है। पूजागृह या रसोई के चारों कोने गोबर से लीपकर उस पर हल्दी से पुतरियां बनाई जाती हैं। यह बहुयें कहलाती हैं। सम्भवतः यह कुल की देवी या उन बहुओं का प्रतीकात्मक चित्रण है।



कुनघुसूं पूने

हरछठ

हरछठ में भित्ति पर भैंस के गोबर से लीपकर आयताकार आकृति बना लेते हैं। जब वह सूख जाये तब चावल भिगोकर पीस कर घोल तैयार कर लेते हैं और लकड़ी में रूई लगाकर ब्रश तैयार कर लेते हैं। पिसे चावल का घोल तैयार करके ब्रश की सहायता से षष्ठी देवी का मुख बनाते हैं, तत्पश्चात उनकी वृहद काया बनाई जाती है। दोनों ओर दो हाथ तथा नीचे दो पैर बनाते हैं। कृष्ण तथा बलराम के चित्र बनते हैं। सूर्य–चन्द्रमा, गंगा–यमुना, माँ–पुत्र, खिलौने, दही बेचने वाली, हल चलाता किसान, स्याऊ, झालर गाय, जरिया, छेवला इत्यादि चित्रानुसार आकृतियाँ बनाते हैं।



हरछठ

हरियाली अमावस्या

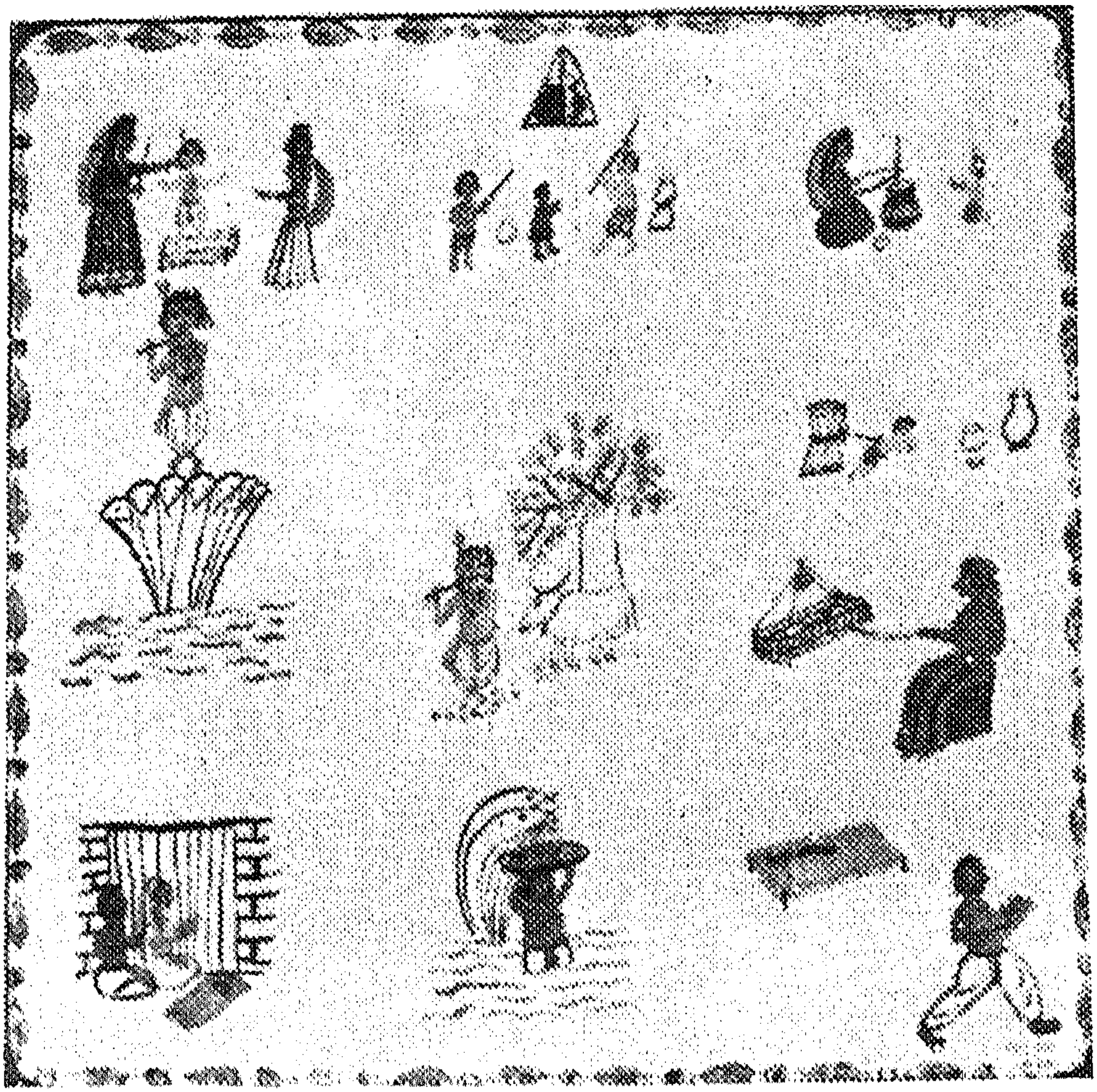
हरियाली अमावस्या पर घर की वरिष्ठ महिला पूजागृह की भित्ति पर गोबर से लीप कर उस पर हल्दी से कन्या रूपी पुतरिया चित्रित करती है।



हरियाली अमावस्या

जन्माष्टमी

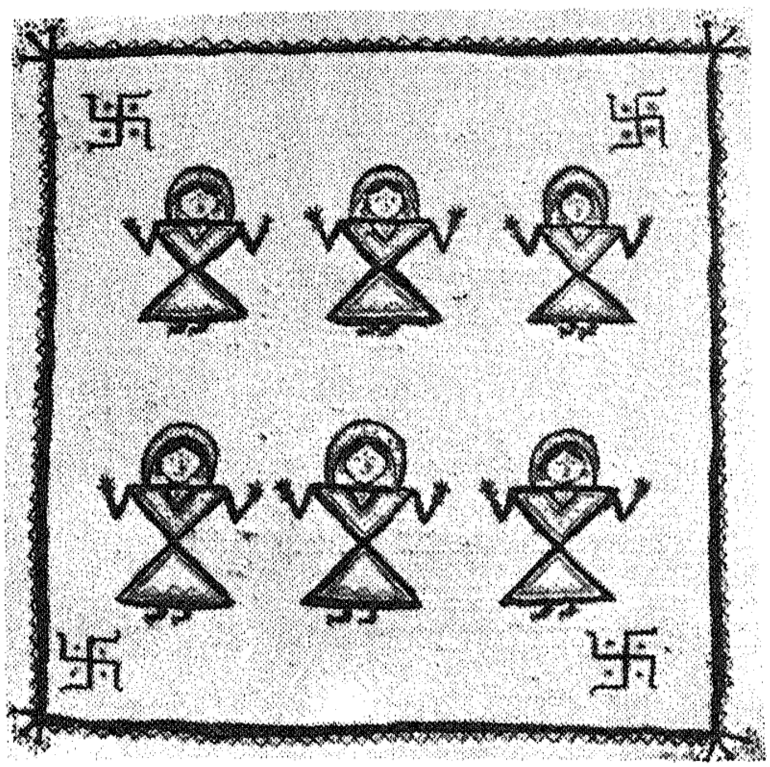
पूजागृह या आन्गन की चूने से पुती हुई भित्ति पर जन्माष्टमी का चित्रण करना स्त्रियों व बालिकाओं की कलात्मकता का प्रतीक होता है। पारम्परिक रन्गों के साथ प्राकृतिक फूल–पत्ती के रसों का प्रयोग भी किया जाता है। रन्ग प्रयोग भी स्वेच्छा से किया जाता है। आकार का बड़ा या छोटा होना चित्रण करने वाली स्त्री या बालिकाओं की इच्छा पर निर्भर होता है।



कन्हैया आठें

बाबू की दौज

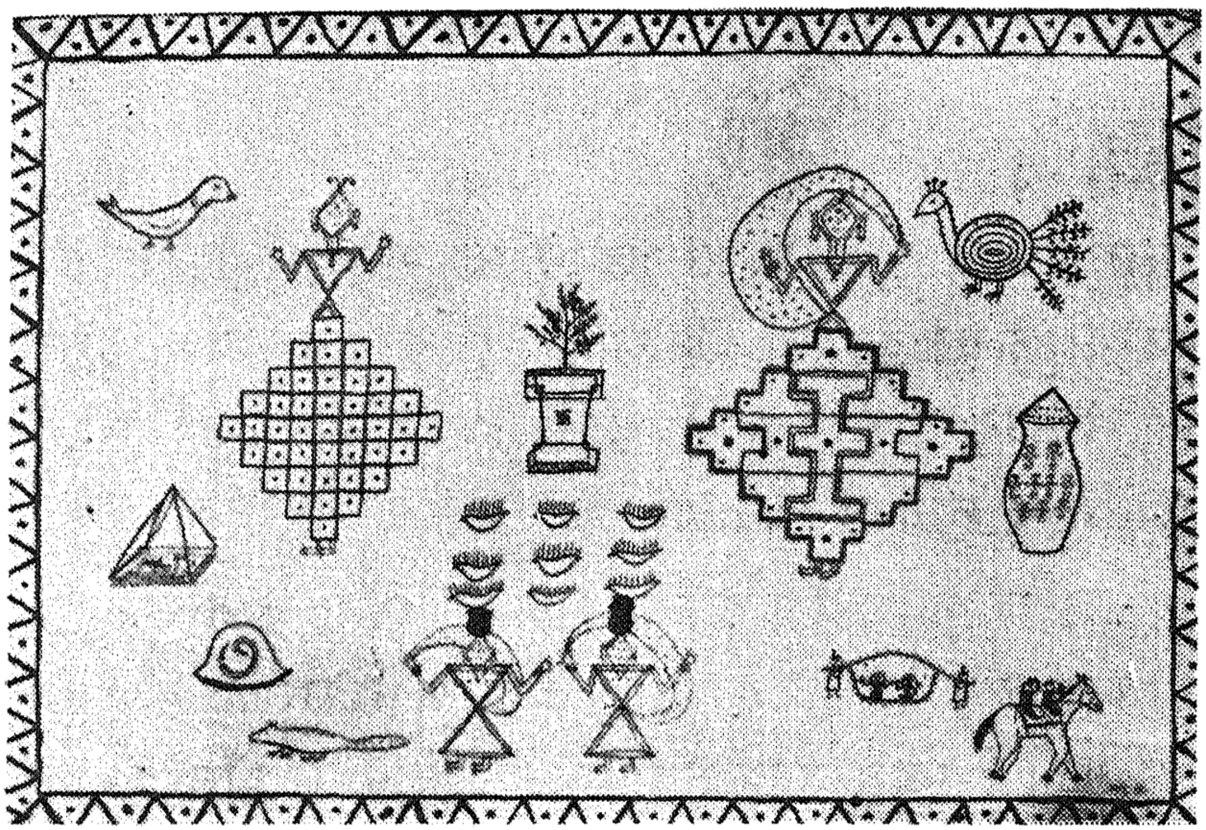
पूजागृह की दीवार को गोबर व चूने से पोतकर तैयार किया जाता है। उसे पट कहते हैं, उस पर हल्दी या गेरू से पुतरियां चित्रित की जाती हैं। इन पुतरियों की सन्ख्या जाति व परिवार के आधार पर परिवर्तित हो जाती है। सामान्यतः छह या सात पुतरियां बनाई जाती हैं।



बाबू की दौज

साउन सुदी नमें

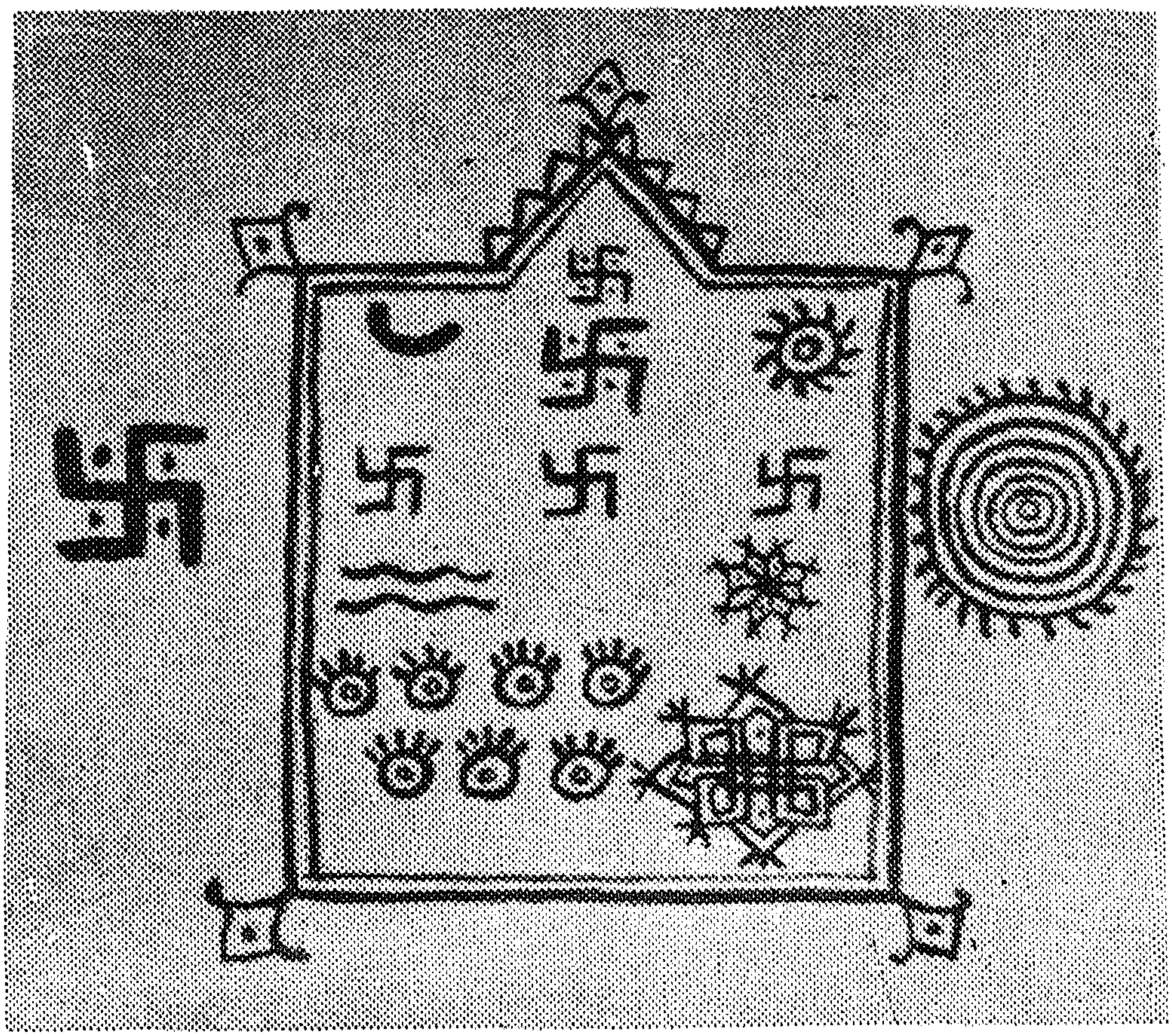
भित्ति चित्रण चूने से पुती सफेद दीवार पर ही किया जाता है। यह चित्रण रन्गीन होता है इसमें पारम्परिक तथा चूने के रन्गों का प्रयोग होता है किन्तु विशेष रूप से स्याही तथा महावर प्रयुक्त होता है। चित्रण चौकोर या आयताकार में किया जाता है। यह चित्रण ज्यामितीय होता है। इसमें भगवान शिव की ज्यामितीय आकृति नीली स्याही से तथा देवी पार्वती की आकृति महावर से चित्रित की जाती है। भुन्जरिया के नौ दोने, तुलसी घरा, श्रावणमास के पक्षी मोर, पपीहा भी चित्रित किये जाते हैं। साउन सुदी नमें से सम्बन्धित कथा की पात्र देवरानी–जेठानी सिर पर मटकी रखे, पालने में सोता शिशु, पृथ्वी पर टोकरी के नीचे मृत सर्प तथा नेवला भी चित्र में बनाये जाते हैं।



साउन सुदी नमें

दस्तौन

दस्टौन के भित्ति चित्रण में सूरज–चन्दा, सान्तिया, चौक, गंगा–जमुना आदि चित्रित किये जाते हैं। यह देवी स्वरूप चौकोर आकृति में चित्रण होता है।



दस्टौन

दुर्गा आन्ठे

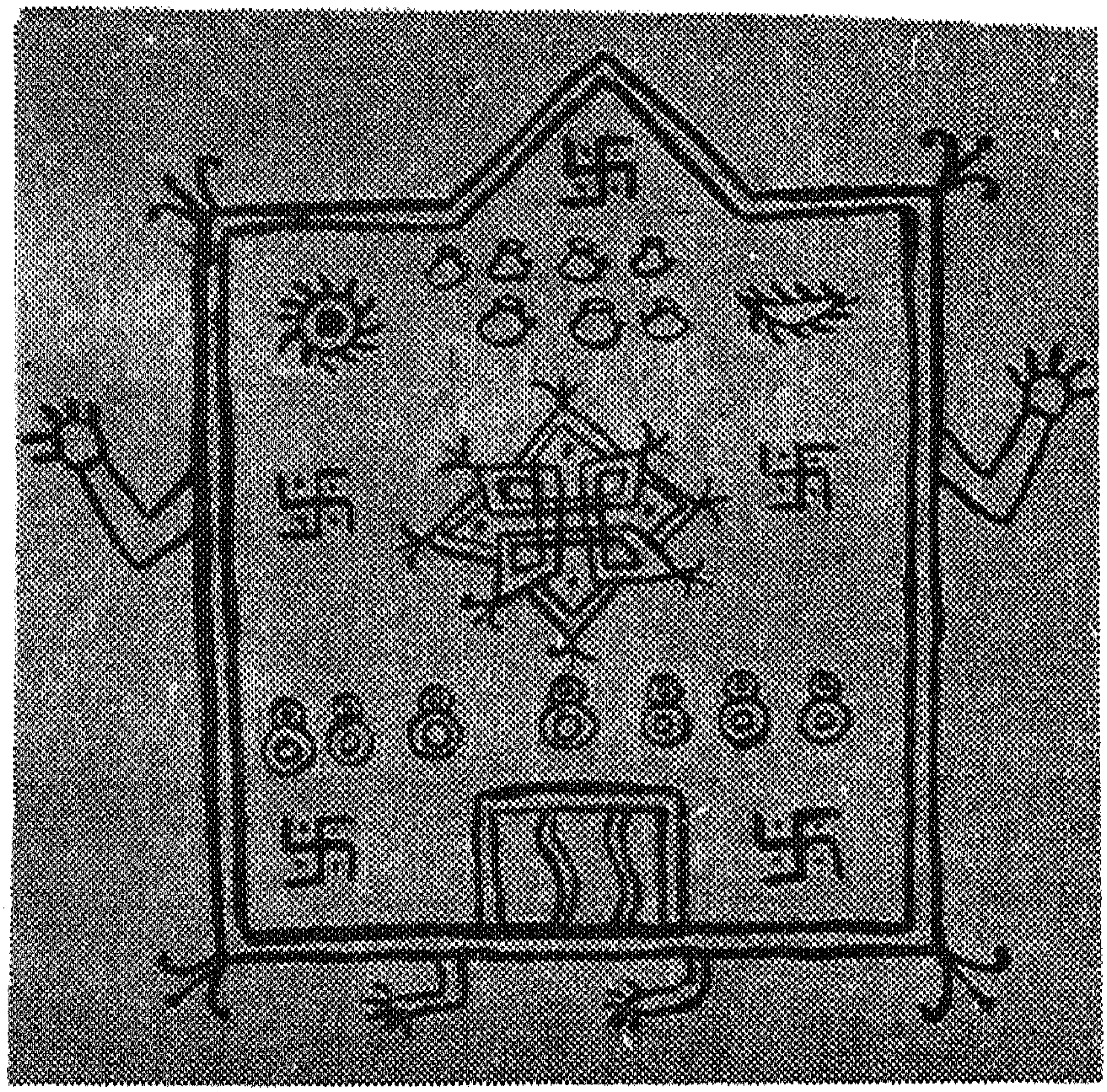
चित्रान्कन के लिये सिन्दूर या रोली को घी में घोल लेते हैं, जिससे दीवार पर सिन्दूर का स्थायित्व बढ़ जाये। इस घोल से एक पुतरिया बनाते हैं तथा माँ दुर्गा का शक्ति प्रतीक त्रिशूल भी बनाया जाता है। माँ दुर्गा की चित्रित छवि को कभी–कभी कपड़े से निर्मित लहंगा चुनरी से सुसज्जित भी कर देते हैं।



दुर्गा आठें

कोहबर या मैहर की पूजा

पूजागृह में विवाह के समय एक भित्ति चित्र भी बनाया जाता है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में इसे मैहर की पूजा भी कहते हैं। यह भित्ति चित्र गेरू से बनाने की परम्परा है। चित्र चौखाने में देवी–देवता स्वरूप देकर चित्रित किया जाता है। चित्र में सूरज, चन्दा, सान्तिया, चौक, गंगा–जमुना, करवा, मैरइयां आदि चित्रण किया जाता है। परिवार तथा जाति के अनुसार इसमें परिवर्तन भी हो जाता है।

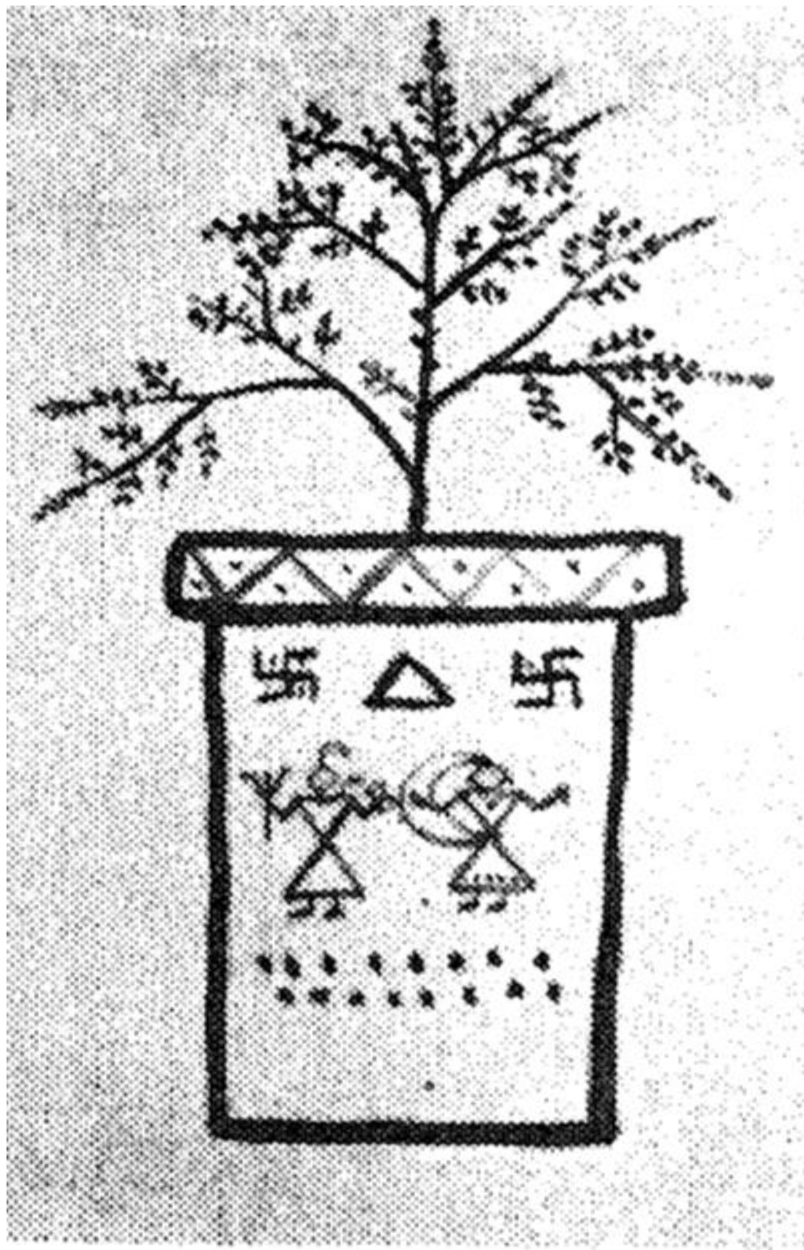


मैहर / कोहबर

अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

सोमवती अमावस्या

तुलसी घरा पर अखण्ड सौभाग्य देने वाले शिव–पार्वती का प्रतीकात्मक चित्रण हल्दी से करती हैं। शिव–पार्वती की आकृति पुतरा–पुतरिया जैसी ही बनाई जाती है।

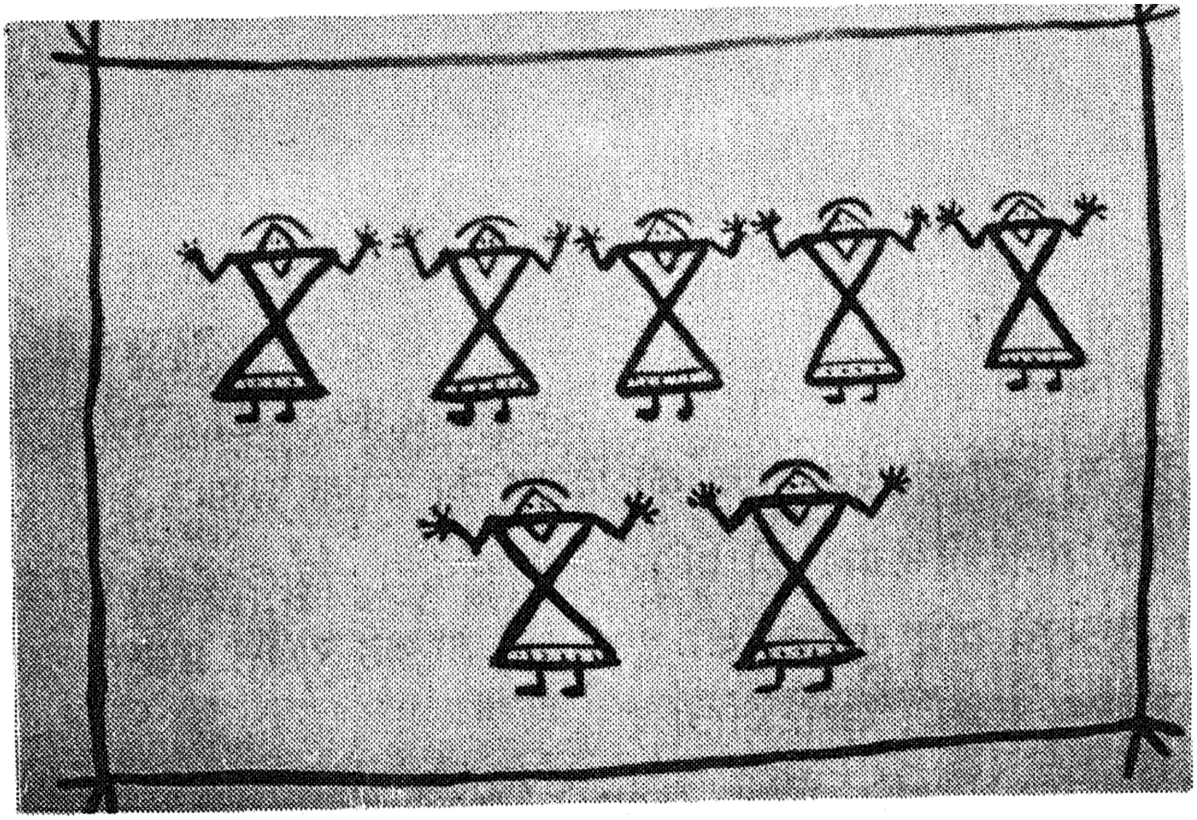


सोमवती अमावस्या

सुहागिलें(सुहागिनें)

लोक चित्रकला Folk Painting Art

देवी की प्रतीक पुतरियां अधिकान्शतया सिन्दूर से बनाई जाती हैं।



सुहागिलें

सुआटा नौरात्र नौरता   नवरात्रि   सुआटा

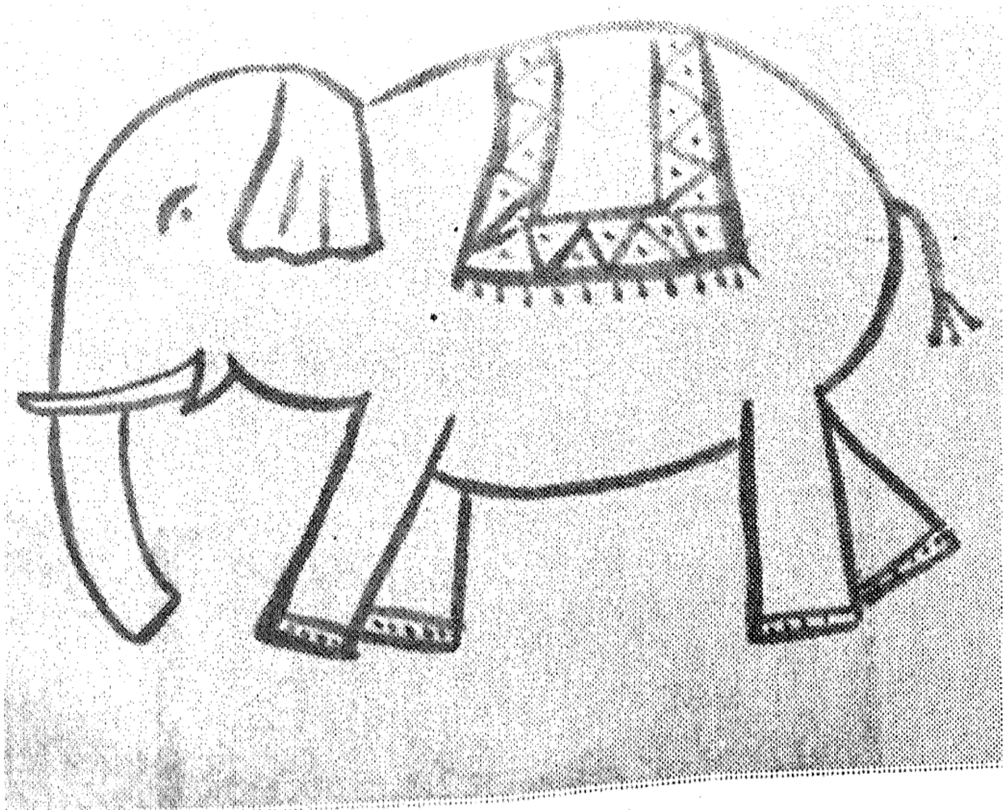
दीवार के सहारे मिट्टी से हिमालय पर्वत या सिन्हासन बनाया जाता है। उस पर्वत मे नौ सीढ़ियां बनाते हैं। पर्वत के ऊपर भित्ति पर मिट्टी से सुआटा दैत्य की आकृति बनाकर उसके हाथ में ढाल–तलवार दे दी जाती है आँखों, मुंह तथा नाभि में कौड़ियों का प्रयोग किया जाता है। लड़कियाँ अपने पुराने टूटे आभूषणों और चूड़ियों से उसकी साज–सज्जा करती हैं। आकृति के दोनों ओर सूरज–चन्दा बनाते हैं। सीढ़ियों के नीचे दोनो ओर स्तम्भ बनाकर उन पर कुण्ड बनाये जाते हैं जिन्हें दुग्ध कुण्ड कहते हैं।



सुअटा

गड़ालेनी आन्ठे

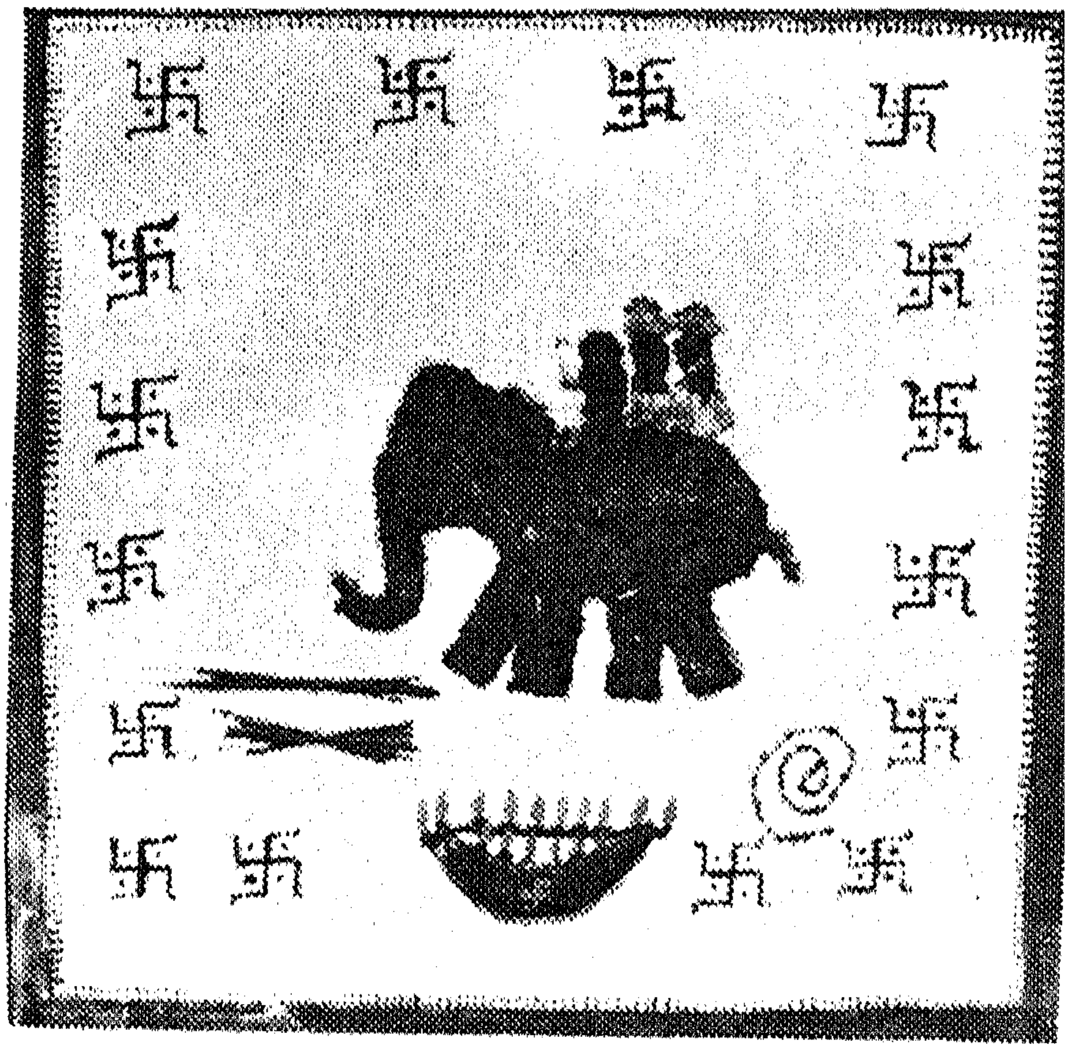
पटे पर हाथी का चित्रण करती हैं। यह चित्रण चन्दन या हल्दी से किया जाता है। चित्रण किया गया पटा, पूजा गृह में या पवित्र किये स्थान पर रख दिया जाता है।



गड़ालेनी आठें

महालक्ष्मी पूजन

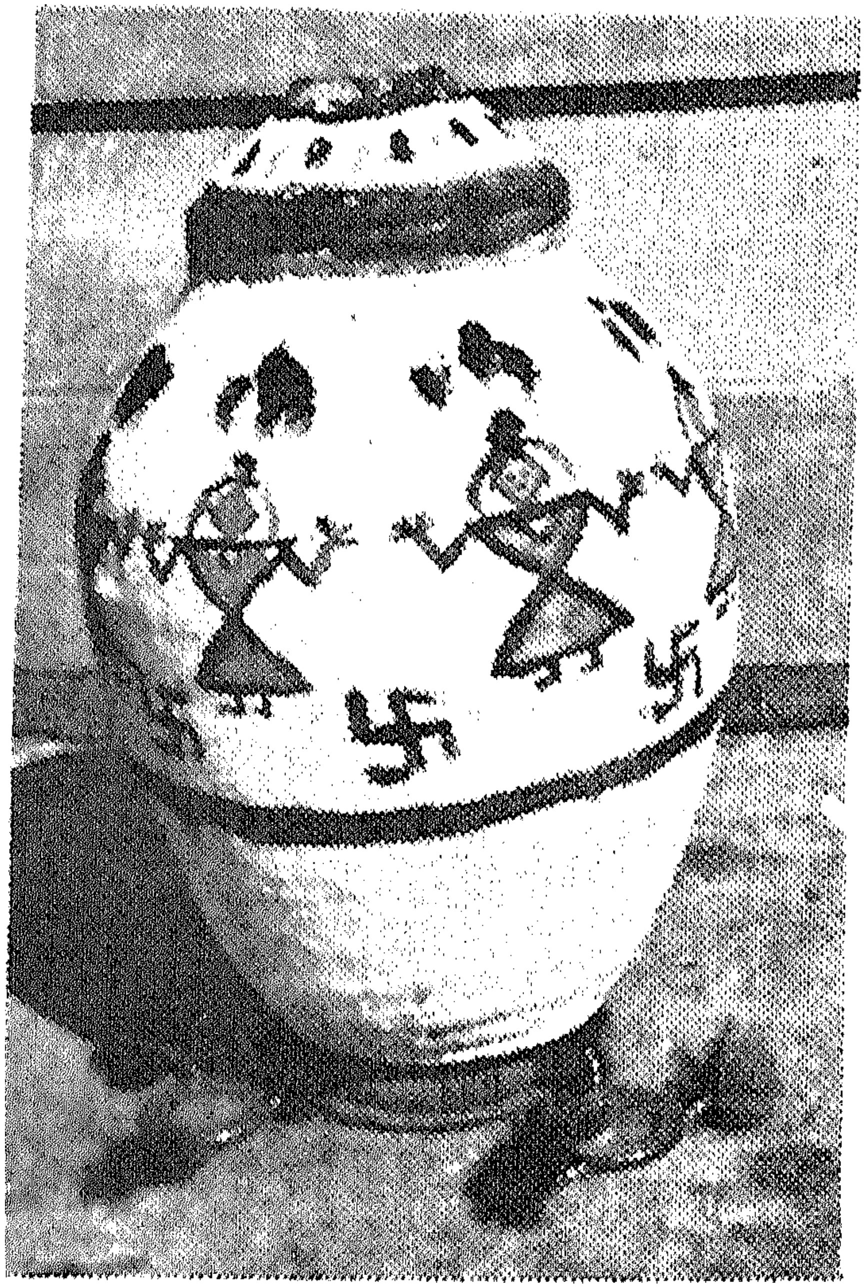
बेसन से हाथी और उस पर विराजमान राजा–रानी के आभूषण और छत्र बनाते हैं।



महालक्ष्मी

कुठला पूजन

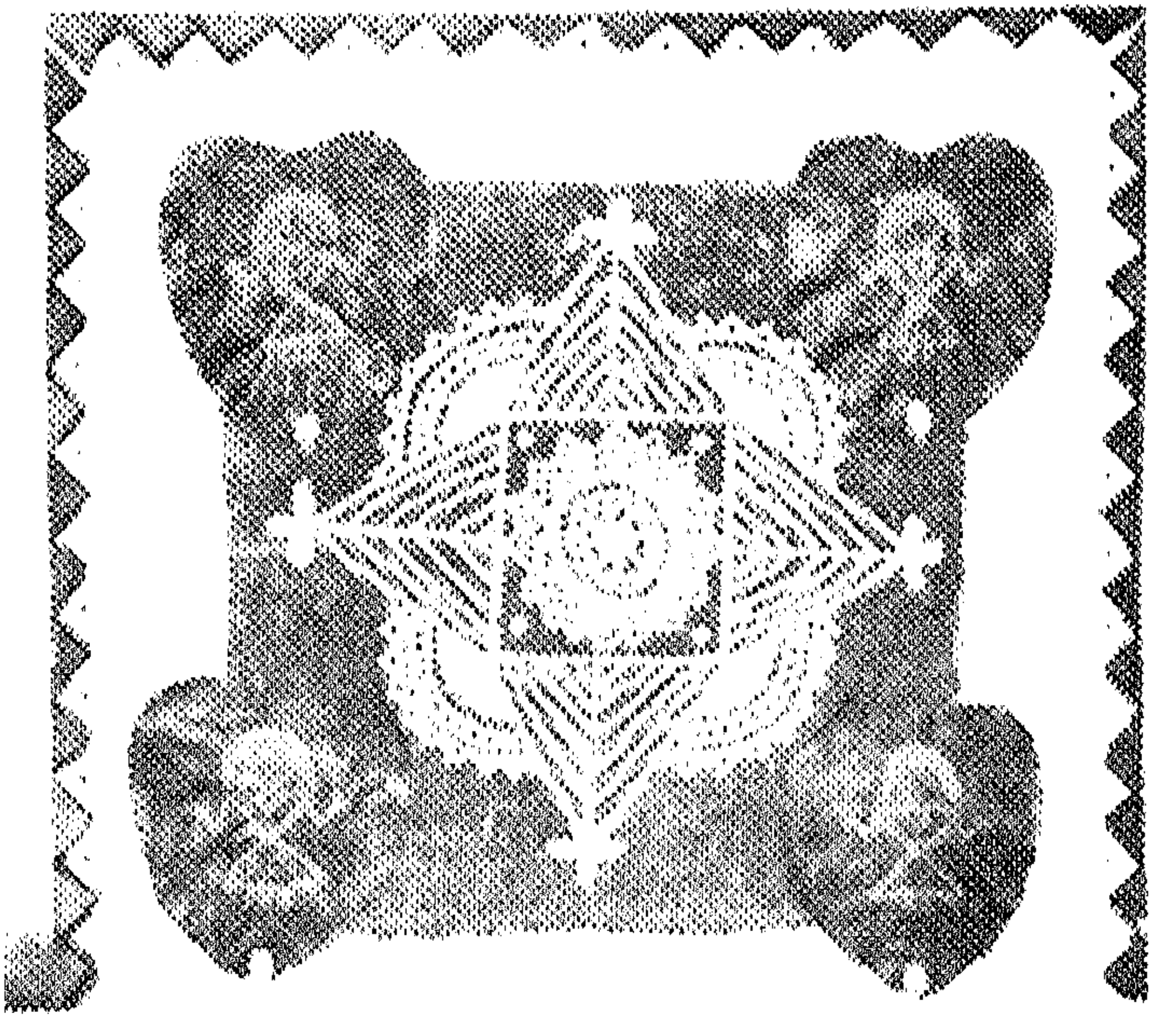
अनाज से भरे कुठला को गंगाजल से पवित्र करके उस पर नमें माई की नौ पुतरियां गोबर या हल्दी से चित्रित की जाती हैं। यह पुतरियां "नौ देवी" या नव ग्रह की प्रतीक होती हैं।



कुठला पूजन

आस माई

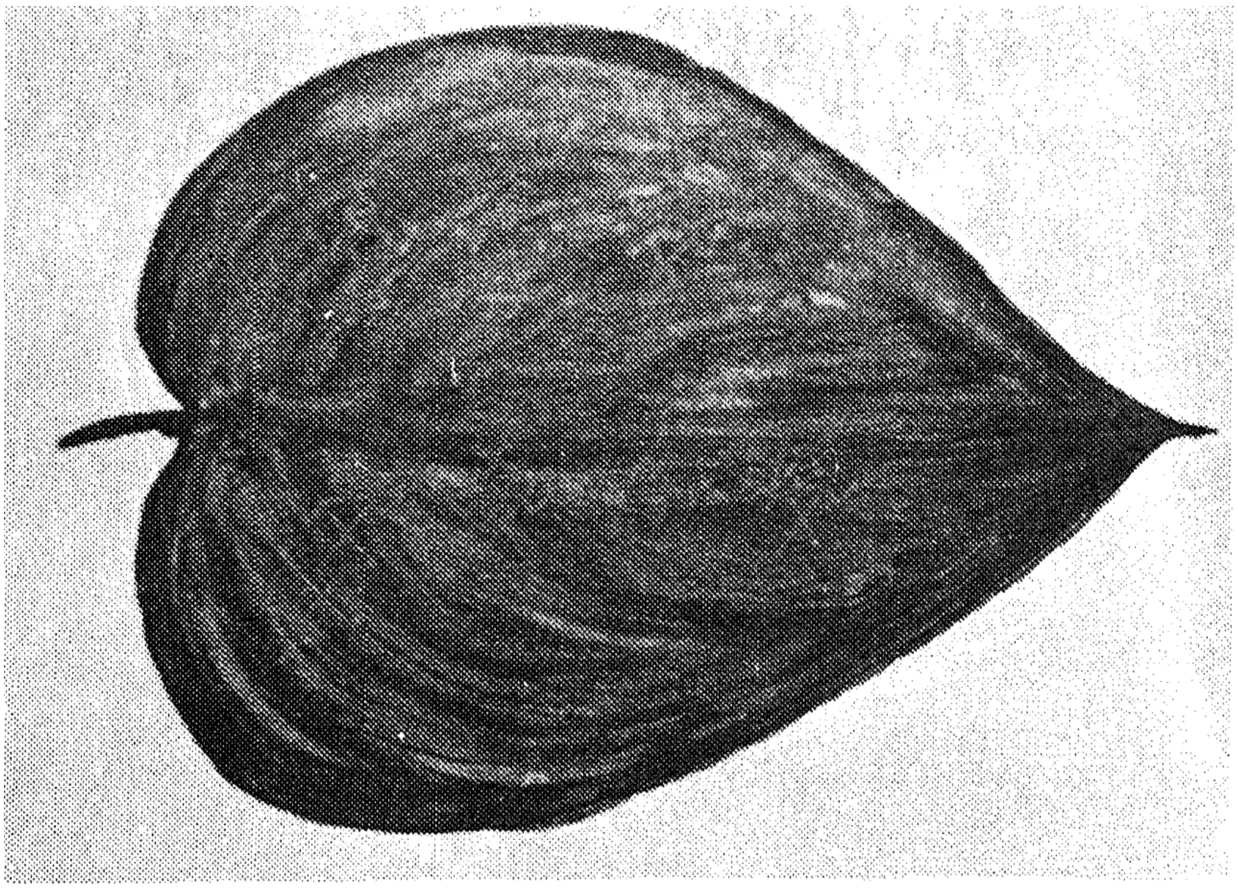
चित्रान्कन पान के पत्ते पर चन्दन व हल्दी से किया जाता है। आस–माई के साथ भूख–माई, प्यास–माई तथा नींद–माई का चित्रण भी करते हैं। पूजा में चार कौड़ियाँ भी रखी जाती हैं जो सौभाग्य का प्रतीक मानी जातीं हैं।



आसमाई

ऋषि पन्चमी

आँगन या पूजागृह में चौक पूर कर उस पर पटा रखते हैं। पान का ताजा हरा पत्ता लेकर उस पर सात पुतरे सप्त–ऋषियों के प्रतीकात्मक रुप में हल्दी या चन्दन से चित्रित किये जाते हैं।



ऋषि पंचमी

चैती पूनों

एक नई मटकी को धोकर चूने से पोतकर उस पर हल्दी तथा इच्छानुसार रन्गों के प्रयोग से चित्रण करते हैं। चित्रण में माँ तथा पुत्र की प्रतीकात्मक रचना की जाती है। चित्रण स्त्री की योग्यता पर निर्भर होता है। वह मटकी को शुभ चिन्हो तथा फूल पत्ती के अलन्करण से सजा देती है।



चैती पूनें

चरूआ

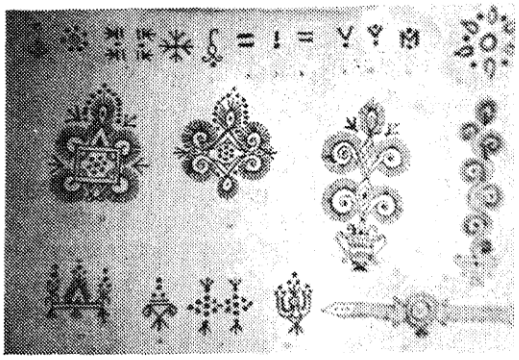
एक मिट्टी का घड़ा लेते हैं, उसे धोकर पवित्र किया जाता है, फिर उस पर सास गोबर से शुभ चिन्ह बनाती है। उस पर जौ, देवल/दिउल चिपका कर सुसज्जित करती है।

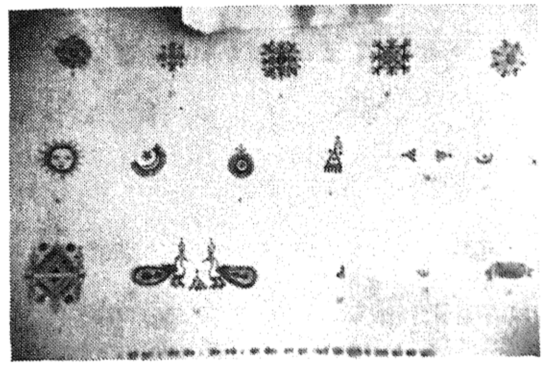


चरूआ

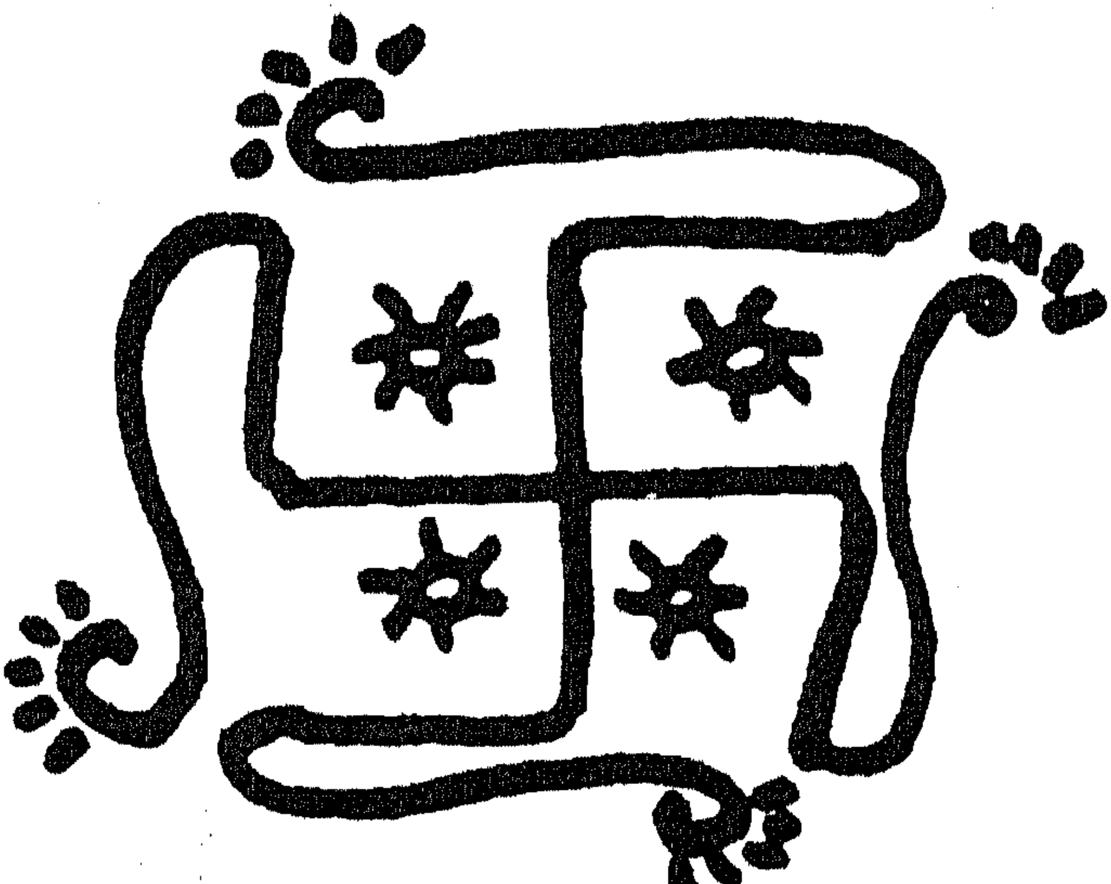
गोदना

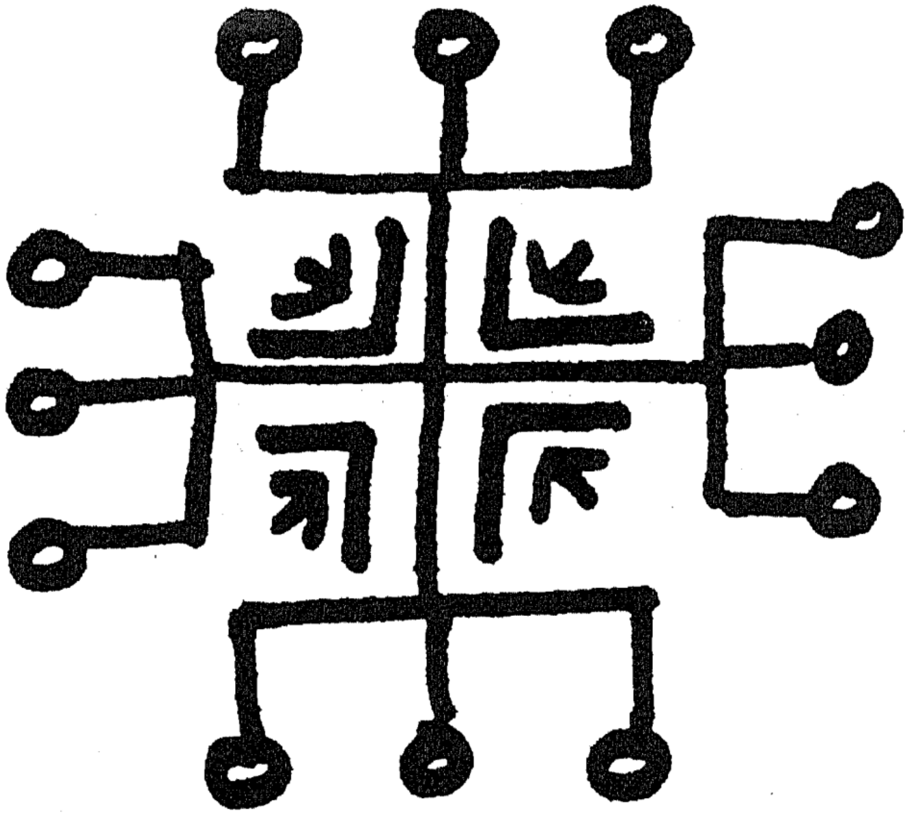
नाम, फूल या देवता की आकृति शरीर अलन्करण, जादू टोने की सुरक्षात्मक जादुई लिपि सूर्य, चन्द्रमा गोदे जाते थे। कृषि युग में पदार्पण के बाद कुंआ, चूल्हा, टोकरी, चावल, अन्न के दाने, आम, सुपारी, ताड़ आदि के वृक्ष मन्दिर, कलश, गुम्बद आदि गोदे जाते थे।





गोदना







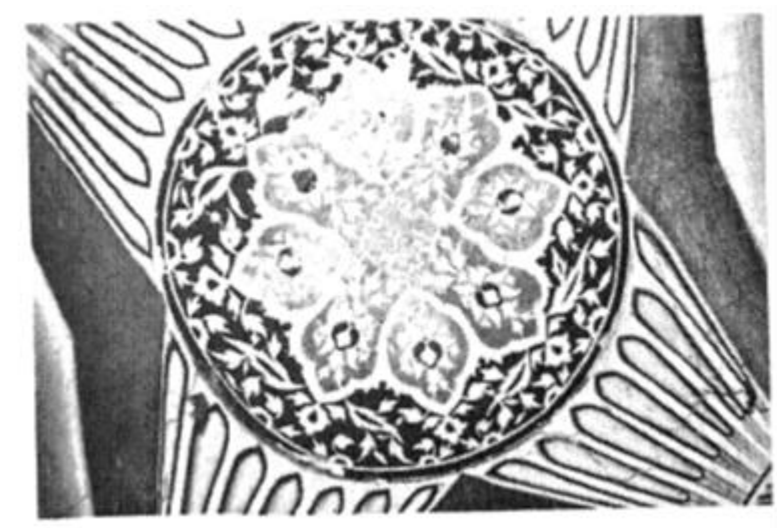
लोक चित्रकला Folk Painting Art



चित्र, लक्ष्मी मन्दिर, ओरछा

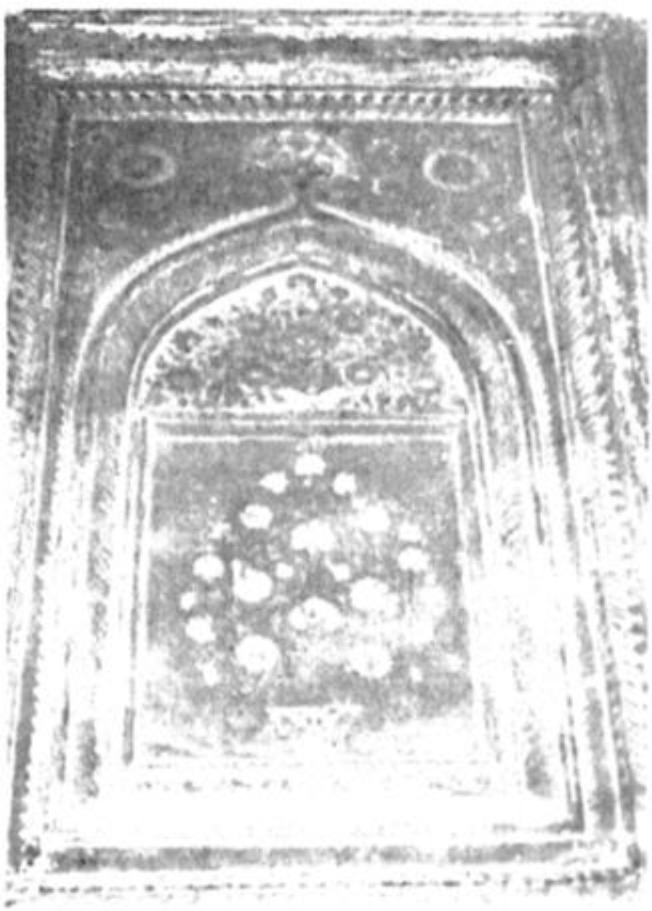


उत्कीर्ण (उकेरी) चित्र, सतखंडा महल
दतिया



समाधि स्थल, छतरी, दतिया

1





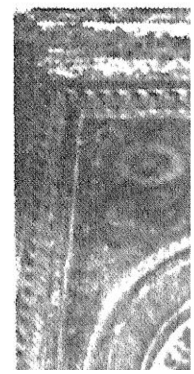
2

भित्ति चित्र, रानी महल, झाँसी

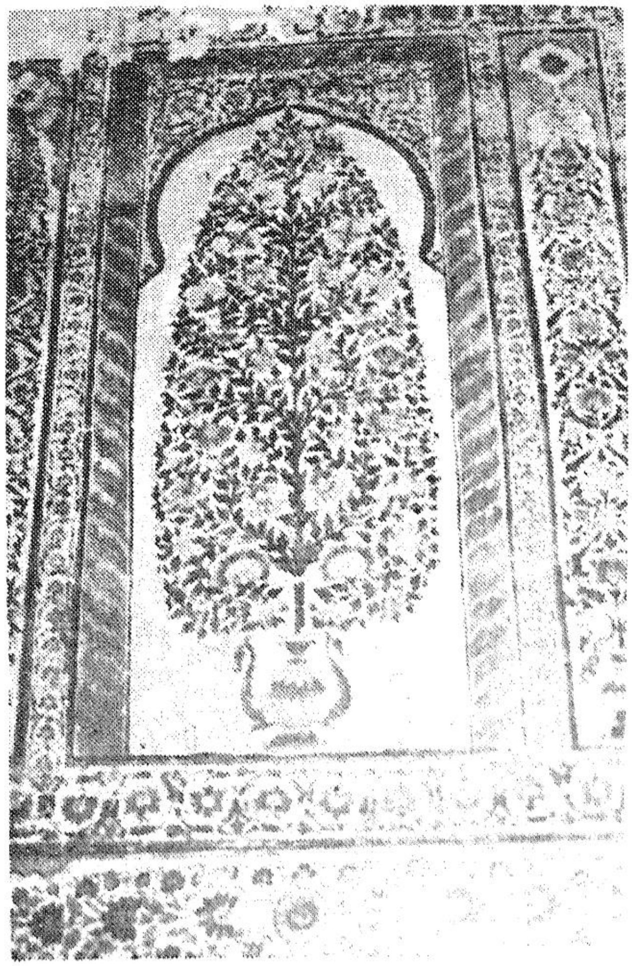


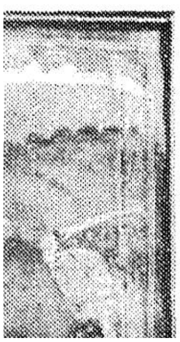


लघु चित्र, बुन्देली शैली
चित्रकार सुखलाल द्वारा बनाया



भित्ति चित्र, रानी महल, झाँसी



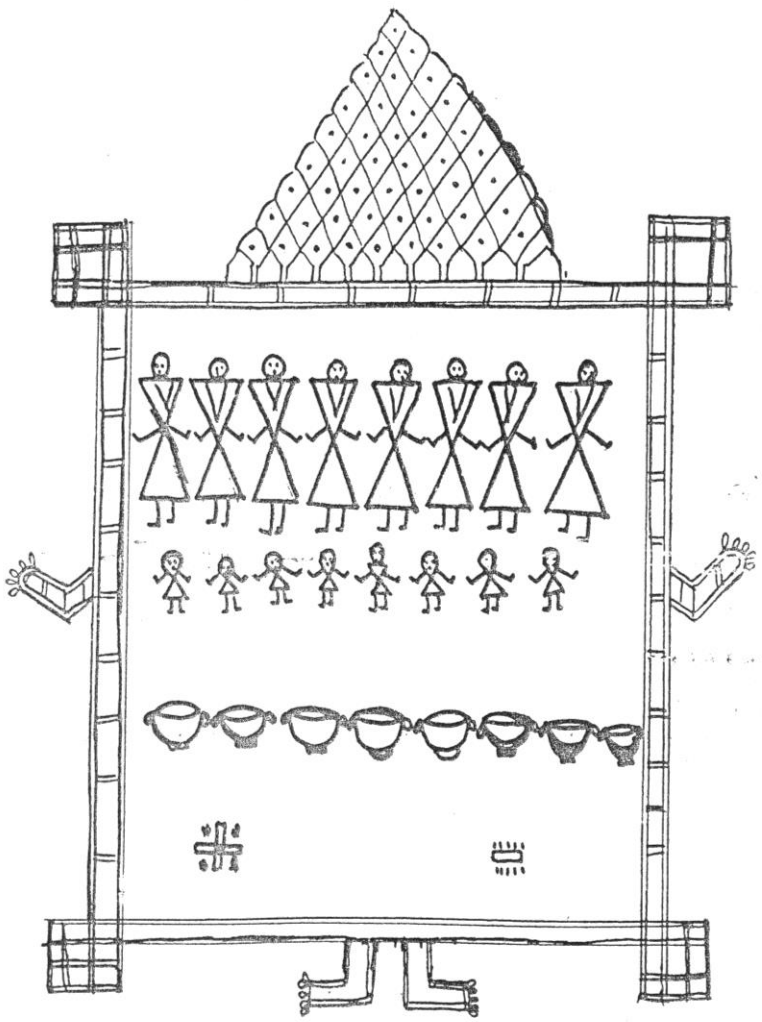


अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

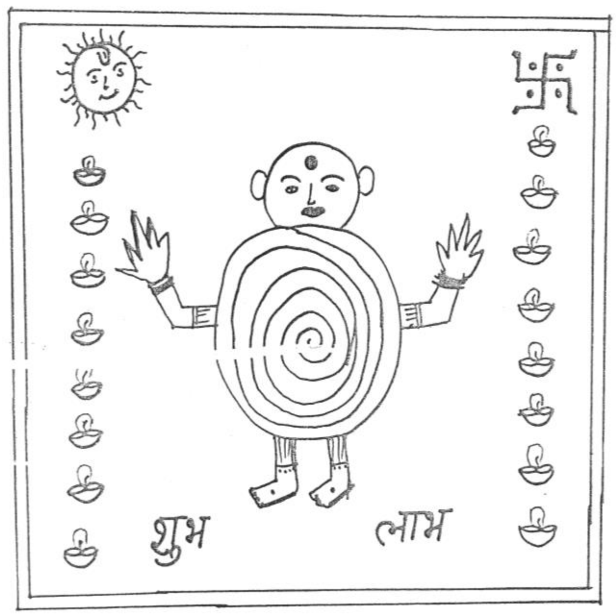
सन्दर्भ /सौजन्य
बुन्देलखण्ड विनीता
सान्स्कृतिक बुन्देलखण्ड अयोध्या प्रसाद कुमुद
बुन्देलखण्ड की लोक–चित्रकला–डा0 श्रीमती मधु श्रीवास्तव101.197.**273688.Bundelkhand Ki chitrakala-1-197**
6ण्09 स्वा बीपजतांसं
हिन्दी साहित्य कोश भाग–9

लोक चित्रकला Folk Painting Art

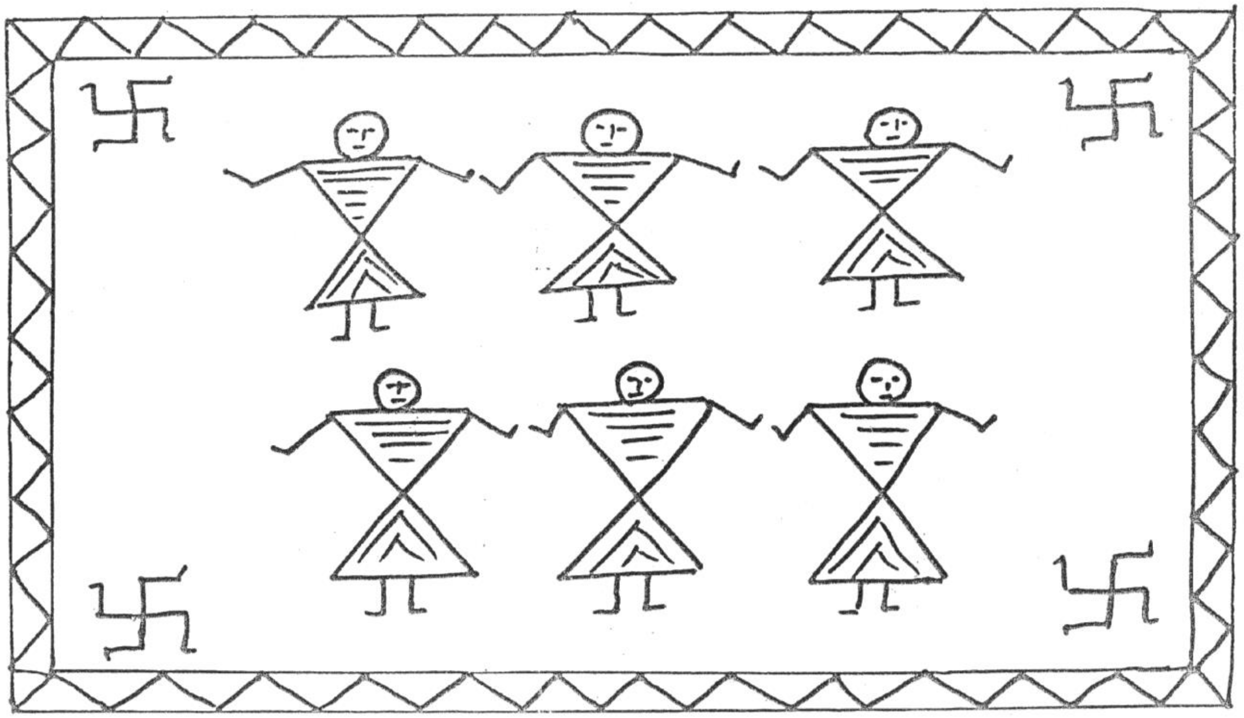
अहोई आढें



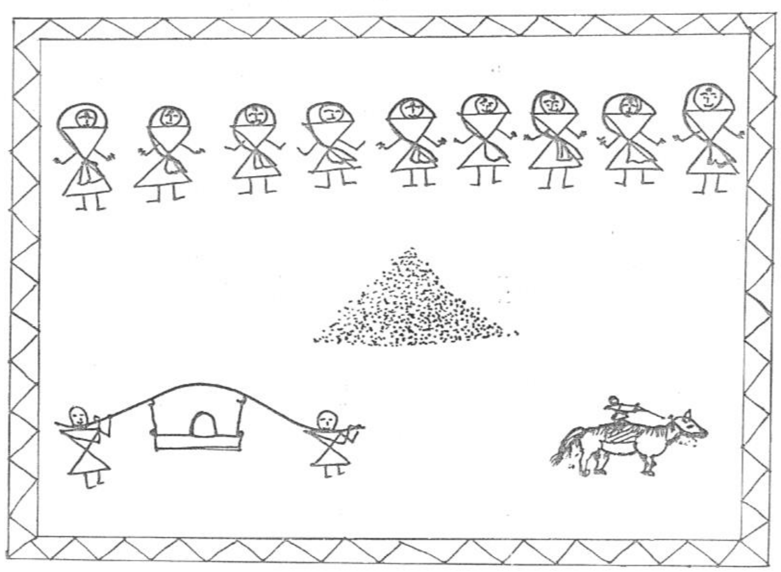
दिवारी



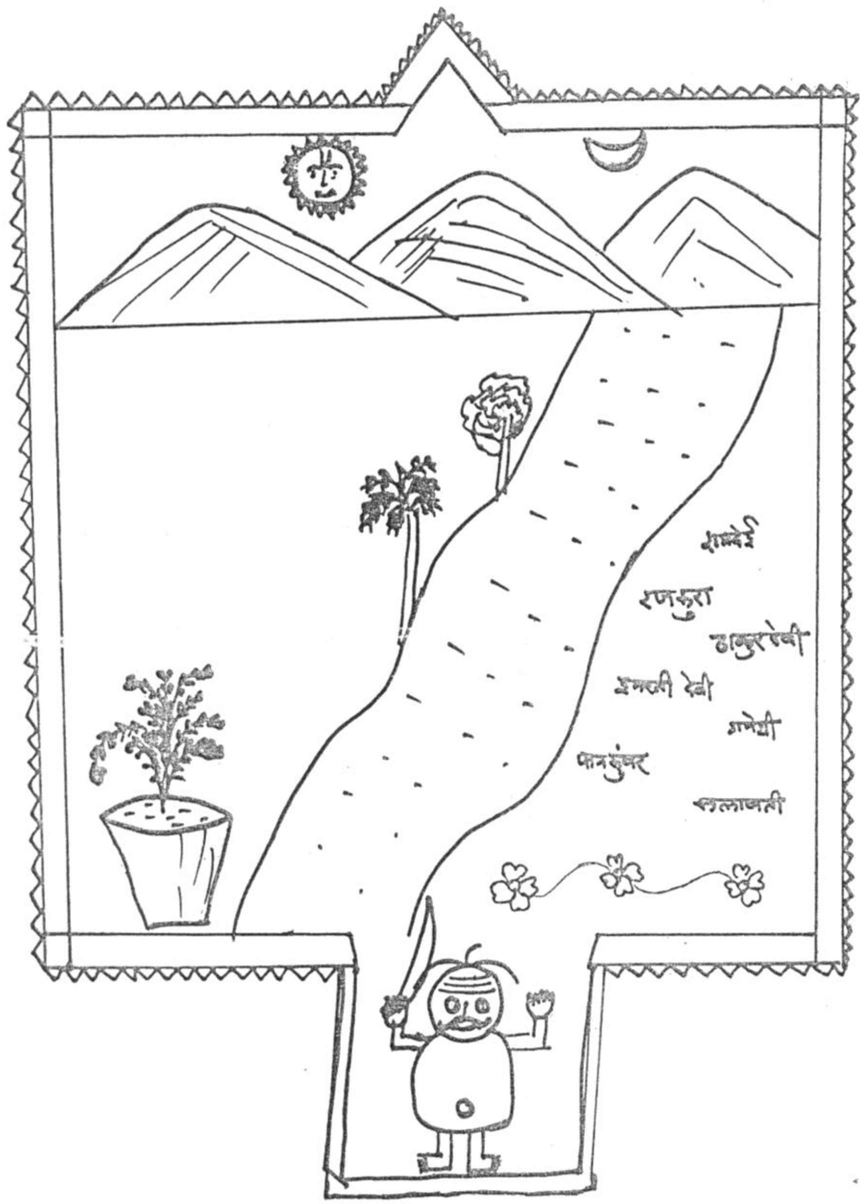
मांय के पुजापे



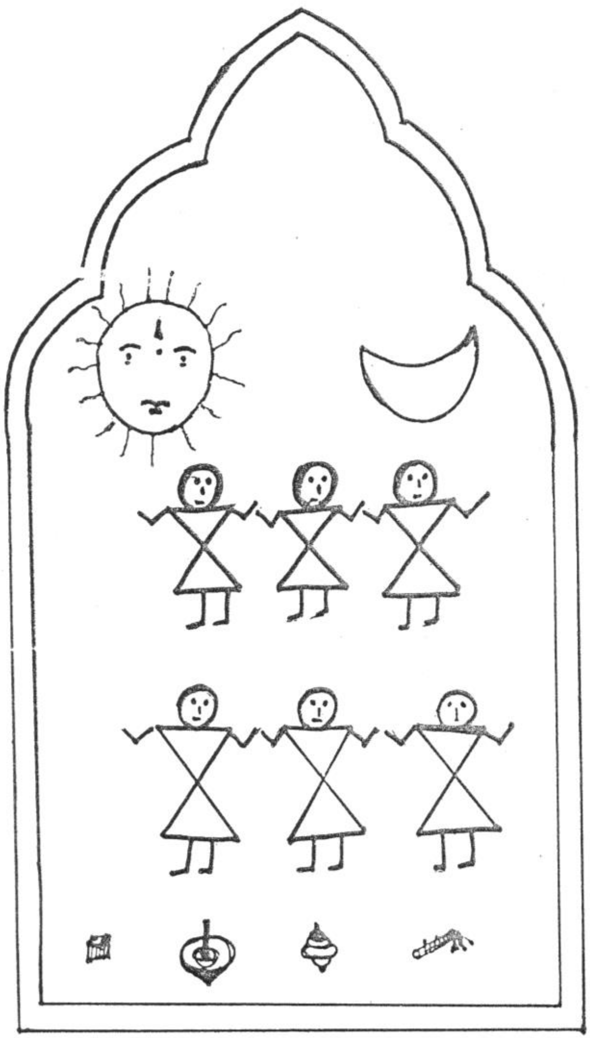
सांउन सुदी नौंमी



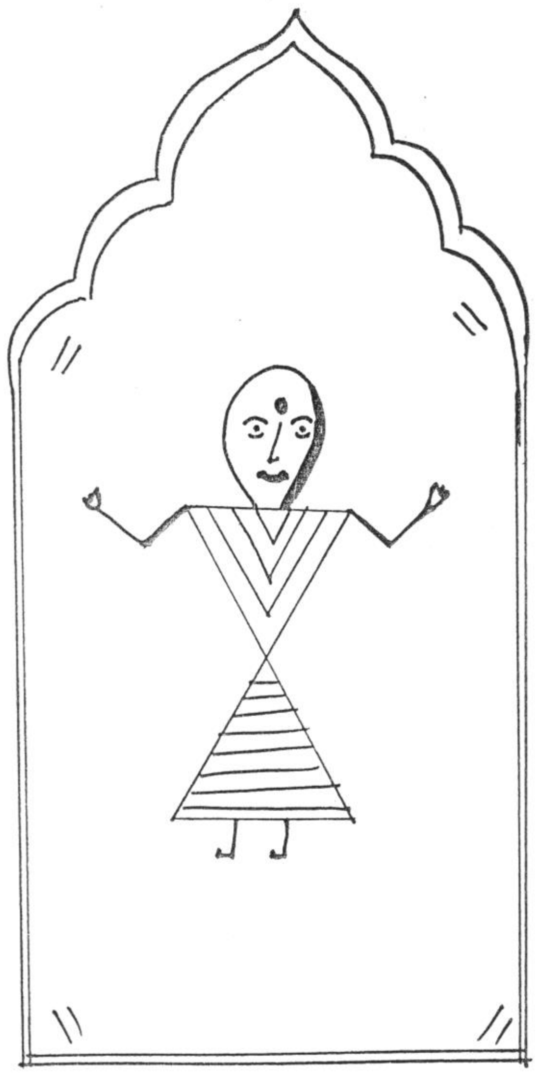
सुआटा

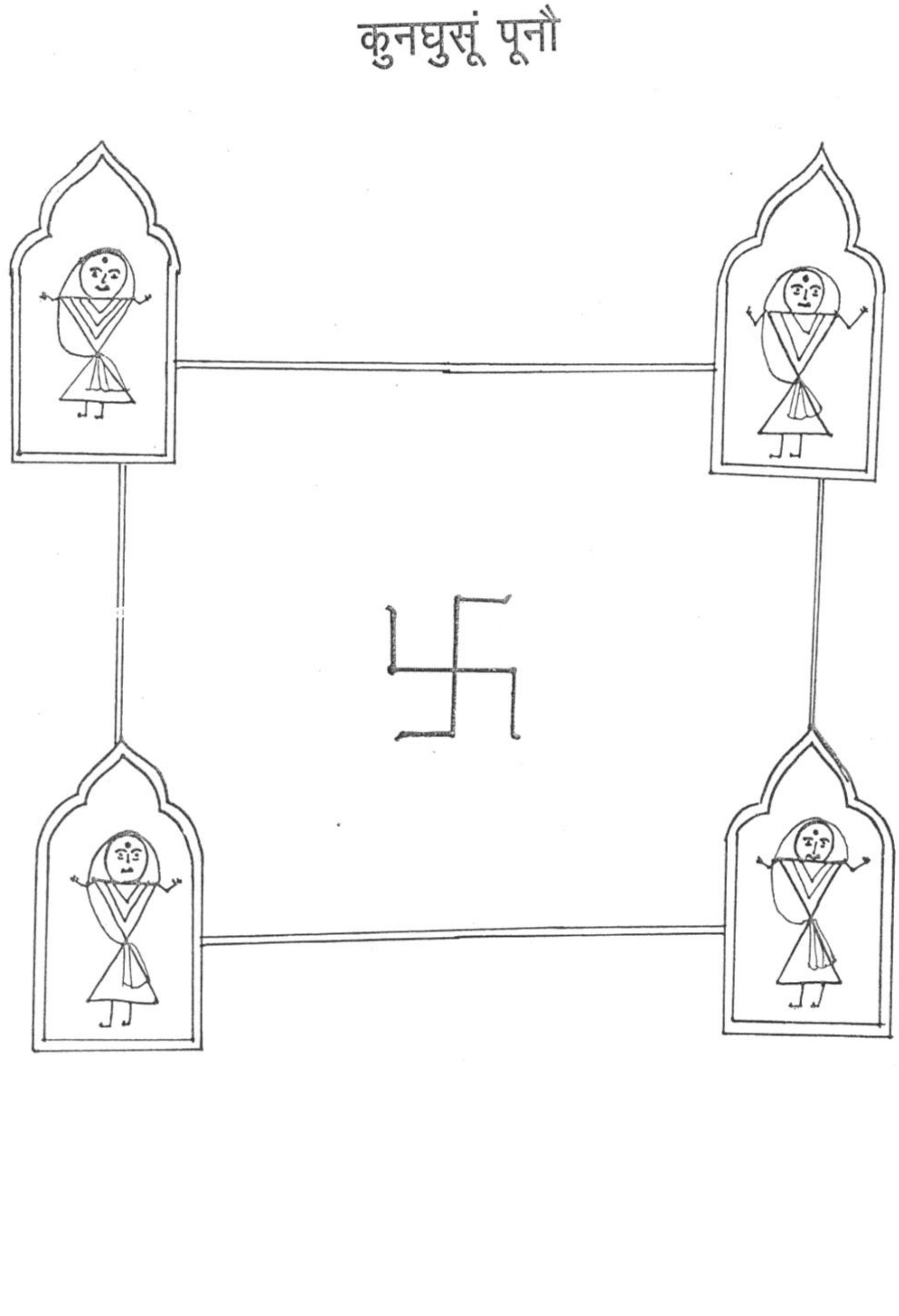


हरछट

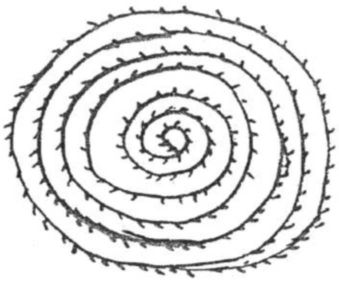


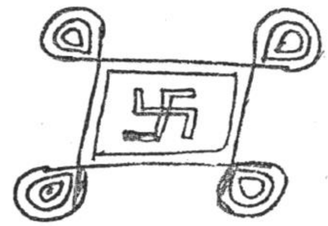
हरीजोत




कुनघुसूं पूनौ

भये के सांतियाँ

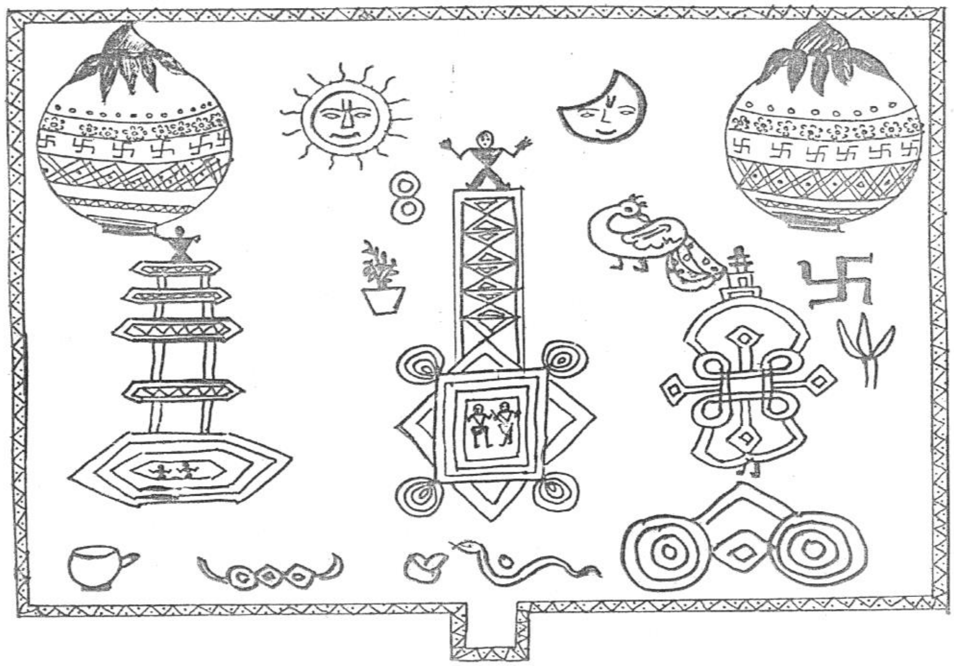


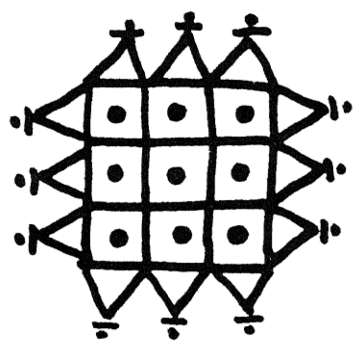


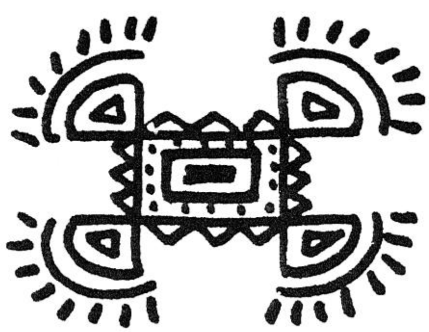
देवठान

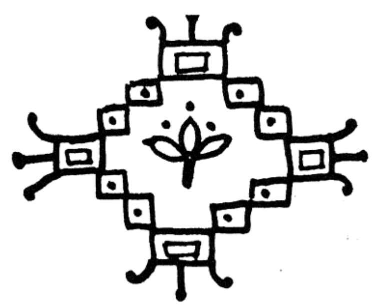


करवा–चौथ









अरविन्द कुमार त्रिपाठी कृत पुरातन बान्दा, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त वर्णन

सन्दर्भ सौजन्य साभार

गांव की सम्माननीय स्त्रिया

बुन्देलखण्ड विनीता मम चंहम पेज देखे

बुन्देलखण्ड की लोक–चित्रकला–डा0 श्रीमती मधु श्रीवास्तव 1–197

इन्टरनेट से, समाचार पत्रों से

लोक चित्रकला Folk Painting Art